अथ चतुर्थदशं काण्डम्

अथैकोनत्रिंशः प्रपाठकः

अथ प्रथमोऽनुवाकः

१. [प्रथमं सूक्तम्]

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'सत्य, सूर्य, ऋत, सोम'

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः॥ १॥

१. इस सारे काण्ड का ऋषि व देवता सूर्या सावित्री ही है। यह गृहपत्नी का नाम रक्खा गया है। स्पष्ट है कि पति को सूर्यसम ज्ञानदीप्त होना चाहिए तथा पत्नी सावित्री हो—बच्चों को व घरवालों को सदा उत्तम प्रेरणा देनेवाली। सूर्या सावित्री कहती है कि **सत्येन भूमिः उत्तभिता**=सत्य से पृथिवी थामी गई है। पृथिवी सत्य पर ही आश्रित है। विशेषतः घर में पति-पत्नी का सत्य-व्यवहार ही उसके गृहस्थ-जीवन को सुखी बना सकता है। असत्य से वे परस्पर आशंकित मनोवृत्तिवाले होंगे और गृहस्थ के मूलतत्त्व 'प्रेम' को खो बैठेंगे। २. **सूर्येण द्यौः उत्तभिता**=सूर्य से द्युलोक थामा गया है। द्युलोकत्व इस सूर्य के कारण ही है। सूर्य ज्ञान का प्रतीक है। ज्ञान के बिना घर प्रकाशमय नहीं लगता। ज्ञान से ही मापक ऊँचा उठता है। ज्ञान के अभाव में मनुष्य 'मनुष्य' ही नहीं रहता। ज्ञानशून्य घर का जीवन पशुतुल्य हो जाता है। ३. **आदित्याः=अदिति**=अदीना देवमाता के पुत्र, अर्थात् देव **ऋतेन**=ऋत से—नियमितता व यज्ञ से **तिष्ठन्ति**=स्थित होते हैं। जहाँ ऋत होता है वहाँ घर के व्यक्ति 'देव' बनते हैं। घर का तीसरा सूत्र 'ऋत' है। सब कार्यों को व्यवस्था से करना आवश्यक ही है। घर में यज्ञों का होना उतना ही आवश्यक है। ये यज्ञ ही घर को स्वर्ग बनाते हैं। **सोमः**=वीर्य **दिवि अधिश्रितः**=ज्ञान में आश्रित है। सोम के रक्षण के लिए स्वाध्याय की वृत्ति आवश्यक है। यह सोम ज्ञानाग्नि का ईंधन बनता है। साथ ही इस सोम का रक्षण करनेवाले पति-पत्नी उत्तम सन्तानों को जन्म देते हैं।

भावार्थ—उत्तम घर वह है, (क) जहाँ सत्य है, (ख) ज्ञान प्रवणवत्ता है, (ग) ऋत का पालन होता है—यज्ञमय जीवन होता है और (घ) सोम का रक्षण होता है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

देवत्व शक्ति व विज्ञान

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः॥ २॥

१. **सोमेन**=शरीर में सोम (वीर्य) के रक्षण से ही **आदित्याः**=अदीना देवमाता के पुत्र, अर्थात् देव **बलिनः**=बलवाले होते हैं। सोम रक्षण से ही वे देव बन पाते हैं। शरीर में उत्पन्न होनेवाला, भोजन के रूप में ग्रहण की गई ओषधियों का सारभूत यह सोम (वीर्य) ही है। इसका रक्षण ही देवों को देवत्व प्राप्त कराता है। **सोमेन**=सोम से ही **पृथिवी**=शरीररूप पृथिवी **मही**=महनीय व महत्त्वपूर्ण बनती है। शरीर में सब वसुओं—निवास के लिए आवश्यक तत्त्वों

का स्थापन इस सोम के द्वारा ही होता है। २. **उ**=और **अथ**=अब **एषां नक्षत्राणां उपस्थे**=इन विविध विज्ञान के नक्षत्रों की उपासना के निमित्त **सोमः**=यह सोम (वीर्य) **आहितः**=शरीर में स्थापित किया गया है। इस सोम के रक्षण से ज्ञानाग्नि तीव्र होती है और इस प्रकार मनुष्य अपने मस्तिष्क-गगन में ज्ञान के नक्षत्रों का उदय कर पाता है।

भावार्थ—सोम रक्षा के तीन महत्त्वपूर्ण परिणाम हैं—(क) हृदय में देववृत्ति का प्रादुर्भाव, (ख) शरीर में शक्ति का स्थापन और (ग) मस्तिष्क में विज्ञान के नक्षत्रों का उदय।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सोमपान का वास्तविक रूप

सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति पार्थिवः॥ ३॥

१. 'सोम ओषधीनामाधिष्ठाता', 'सोम वीरुधां पते', 'गिरीषु हि सोमः' इन ब्राह्मणग्रन्थों के वाक्यों से यह स्पष्ट है कि सोम एक लता है, जो पर्वतों पर उत्पन्न होती है और अत्यन्त गुणकारी है, परन्तु प्रस्तुत प्रकरण में सोम का भाव इस वानस्पतिक ओषधि से नहीं है। यहाँ तो 'रेतः सोमः' वीर्यशक्ति ही सोम है। मन्त्र में कहते हैं कि **यत्**=जो **ओषधिं संपिषन्ति**=ओषधी को सम्यक् पीसते हैं और उसका रस निकालकर **मन्यते**=मानते हैं कि **सोमं पपीवान्**=हमने सोम पी लिया है। उनकी यह धारणा ठीक नहीं। २. **यं सोमम्**=जिस सोम को **ब्रह्माणः विदुः**=ज्ञानी पुरुष जानते हैं, **तस्य**=उस सोम का **पार्थिवः**=पार्थिव भोगों में ग्रसित पुरुष **न अश्नाति**=भक्षण नहीं कर सकता। सोम तो शरीर में उत्पन्न होनेवाला वीर्य है। पार्थिव भोगों से ऊपर उठा हुआ ज्ञानी पुरुष ही इसको शरीर में सुरक्षित करके इसे ज्ञानाग्नि का ईंधन बनाता है। दीप्त ज्ञानाग्निवाला बनकर ब्रह्मदर्शन का अधिकारी होता है।

भावार्थ—सोमलता के रस का पान करना सोमपान नहीं है। वीर्य का रक्षण ही सोमपान है। भौतिकवृत्तिवाला पुरुष इस सोमका पान नहीं कर पाता, ज्ञानी ही इस सोम का पान करता है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आप्यायन व दीर्घजीवन

यत्त्वा सोम प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः॥ ४॥

१. हे **सोम**=वीर्यशक्ते! **यत्**=जब ज्ञानी पुरुष **त्वा प्रपिबन्ति**=तुझे प्रकर्षेण शरीर में ही पीने का प्रयत्न करते हैं **ततः**=तब **पुनः आप्यायसे**=फिर से तू शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्गों की शक्ति को आप्ययित कर देता है। तू शरीर को पुष्ट, मन को निर्मल व बुद्धि को तीव्र बनाता है। २. **वायुः सोमस्य रक्षिता**=वायु सोम का रक्षण करनेवाला है। वायु अर्थात् प्राणों की साधना शरीर में वीर्य की ऊर्ध्वगति का कारण बनती है। इस ऊर्ध्वगति से **मासः**=(मस्यते to change form) शरीर की आकृति को परिवर्तित कर देनेवाला, क्षीण अङ्गों को फिर से आप्यायित कर देनेवाला यह सोम **समानां आकृतिः**=वर्षों का बनानेवाला होता है, अर्थात् सोमरक्षण से दीर्घ आयुष्य प्राप्त होता है।

भावार्थ—प्राण-साधना द्वारा सोम की ऊर्ध्वगति होती है। शरीर में रक्षित सोम सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों की शक्ति को बढ़ानेवाला व दीर्घजीवन प्राप्त करानेवाला होता है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**सोमः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वासनाओं का उद्बर्हण व ज्ञानप्रवणता

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः।
ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः॥ ५॥

१. **आच्छत् विधानैः**=समन्तात् आवरण के उपायों से—सब ओर से आक्रमण करनेवाली वासनाओं को दूर रखने के उपायों से **गुपितः**=यह सोम सुरक्षित हुआ है। **बार्हतैः**=वासनाओं के उद्बर्हणों, समूल विनाशों के द्वारा **सोमः रक्षितः**=सोम शरीर में रक्षित होता है। धान्य के रक्षण के लिए घास-फूँस का उद्बर्हण आवश्क होता है, इसीप्रकार सोम के रक्षण के लिए वासनाओं का हृदयक्षेत्र से उद्बर्हण आवश्यक है। २. हे सोम! तू **इत्**=निश्चय से **ग्राव्णाम्**=ज्ञानी स्तोताओं की ज्ञान-चर्चाओं को **शृण्वन्**=सुनता हुआ **तिष्ठसि**=शरीर में स्थित होता है। जो मनुष्य ज्ञानप्रधान जीवन बिताता है, यह सोम उसकी ज्ञानाग्नि का ईंधन बनकर उसकी ज्ञानाग्नि को दीप्त करता है। एवं, शरीर में उपयुक्त हुआ-हुआ यह सोम नष्ट नहीं होता, **पार्थिवः ते न अश्नाति**= हे सोम! पार्थिव भोगों में आसक्त पुरुष तेरा सेवन नहीं करता। भोगासक्ति सोमरक्षा की विरोधिनी है।

भावार्थ—सोम-रक्षण के लिए वासनाओं का उद्बर्हण आवश्यक है, उसके लिए ज्ञानप्रवणता उत्तम साधन है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वास्तविक सम्पत्ति

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्। द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम्॥ ६॥

१. **यत्**=जब **सूर्या पतिम् अयात्**=सविता की पुत्री—उज्ज्वल ज्ञानवाली यह सूर्या अपने पति के गृह को जाती है उस समय **द्यौः भूमिः**=ज्ञानदीप्त मस्तिष्क तथा पृथिवी के समान दृढ़ शरीर इसके **कोशः आसीत्**=वास्तविक धन थे। ज्ञान व शक्ति ही इसका कोश था। इस कोश को लेकर ही यह पतिगृह को प्राप्त हुई। २. उस समय **चित्तिः**=ज्ञान व समझदारी **उपबर्हणम् आः (आसीत्)**=इसका सिराहना था। जैसे-सिरहाना सिर को सहारा देता है उसीप्रकार इस कन्या की समझदारी ही इसे समस्याओं के सुलझाने में सहायक होती है। **चक्षुः अभ्यञ्जनम् आः**=इसका ठीक दृष्टिकोण व स्नेहपूर्ण दृष्टि ही सुरमा था। अञ्जन आँख के अभ्यञ्जन, सौन्दर्यवर्धन का कारण होता है। इसीप्रकार इसका ठीक दृष्टिकोण व स्नेहपूर्ण दृष्टि इसके सौन्दर्य को बढ़ानेवाली थी।

भावार्थ—कन्या की योग्यता यह है कि वह समझदार हो (चित्तिः), उसका दृष्टिकोण ठीक हो तथा वह स्नेहपूर्ण दृष्टिवाली हो (चक्षुः)। यह मस्तिष्क के ज्ञान व शरीर के बलरूप कोश को लेकर पतिगृह को प्राप्त हो।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रैभी नाराशंसी, भद्रं गाथा

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी। सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृता॥ ७॥

१. विवाह के समय **रैभी**=प्रभु-स्तवन करनेवाली ऋचा ही **अनुदेयी**=इसका दहेज **आसीत्**= था। पिता कन्या को ऋचाओं द्वारा प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाली बनाता है। यह स्तुतिवृत्तिवाली बना देना ही सर्वोत्तम दहेज देना है। **नाराशंसी**=नर-समूह के शंसन की वृत्ति, सबकी प्रशंसा

करने की वृत्ति और कमियों की ओर ध्यान न देने की वृत्ति ही इसका **न्योचनी**=कुर्त्ता होता है अथवा वीर पुरुषों के चरितों का शंसन, अर्थात् इनका इतिहास ज्ञान ही इस युवति का समुचित वस्त्र है। २. **भद्रं इत् सूर्यायाः वासः**=इस युवति की भद्रता ही इसका ओढ़ने का वस्त्र है। **गाथया**=प्रभु गुणगान से **परिष्कृता**=अलंकृत हुई-हुई यह युवति **एति**=पतिगृह की ओर आती है।

भावार्थ—कन्या को स्तुतिवृत्तिवाला बना देना ही सच्चा दहेज है। सदा दूसरों के गुणों को देखने की वृत्तिवाला होना ही इसका कुर्त्ता है। यह युवति किसी के भी अवगुणों की ओर ध्यान नहीं देती, अतः निन्दा नहीं करती। इसका वस्त्र इसकी भद्रता है, शिष्टाचार है। यह प्रभु-गुणगान की वृत्ति से परिष्कृत जीवनवाली बनकर पतिगृह को प्राप्त होती है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

जीवन-साथी का अन्वेषण

स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत्पुरोगवः॥ ८॥

१. **स्तोमाः**=प्रभु के स्तोम ही नवयुवति को **प्रतिधयः आसन्**=(प्रतिधि=Food) भोजन दें। जिसप्रकार अन्न का भोजन शरीर की पुष्टि का कारण बनता है, उसीप्रकार प्रभु के स्तोत्र इसकी अध्यात्म पुष्टि का कारण बनते हैं। **छन्दः**=वासनाओं से बचानेवाले (छद आवरणे) वेदमन्त्र ही इसके **कुरीरम्** शिरोवस्त्र (A kind of head dress for women) व **ओपशः**=शिरोभूषण थे। इन छन्दों के द्वारा ही इसके मस्तिष्क की शोभा थी। २. **सूर्यायाः**=सूर्या के **अश्विना**=माता-पिता कर्मव्याप्त (अशू व्याप्तौ) जनक व जननी ही **वरा**=इसके साथी का वरण करनेवाले थे। उन्होंने सूर्या के जीवनसंगी को ढूँढने का काम आरम्भ किया। इनके इस कार्य में **अग्निः पुरोगवः आसीत्**=ज्ञानी ब्राह्मण ही इनका अगवा, पथप्रर्दशक था। वस्तुतः विद्यार्थियों के आचार्य ही अग्नि हैं। वे इनके शिक्षक होने से इनके गुण-कर्म-स्वभावों से परिचित होने के कारण ठीक चुनाव कर पाते हैं। वे आचार्य परामर्श देते हैं। उस परामर्श से माता-पिता देखभाल करते हैं और अन्त में सन्तानों की स्वीकृति होने पर ये सम्बन्ध परिपक्व हो जाते हैं।

भावार्थ—प्रभु-स्तोत्र ही सूर्या का भोजन है। वेदमन्त्र ही उसके शिरोवस्त्र व शिरोभूषण हैं। माता-पिता इस सूर्या के जीवनसाथी को ढूँढने का यत्न करते हैं। आचार्य इस कार्य में उनका सहायक होता है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'सूर्या व सोम' का परिणय

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा। सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादादात्॥ ९॥

१. पत्नी को 'सूर्या' बनना चाहिए तो पति को 'सोम'। पति शरीर में सोम का रक्षण करता हुआ सोमशक्ति का पुञ्ज बने। सोमरक्षण से वह अत्यन्त सौम्य स्वभाव का बन पाएगा। यह **सोमः**=सोमशक्ति का रक्षक व सौम्य स्वभाव का युवक **वधूयुः अभवत्**=वधू की कामनावाला हुआ, **उभा अश्विना**=दोनों माता-पिता **वरा**=उसके साथी का चुनाव करनेवाले **आस्ताम्** थे। २. 'सूर्या' के माता-पिता उसके लिए योग्य साथी की खोज में थे। 'सोम' युवक के माता-पिता भी उसके लिए एक योग्य युवति की खोज में थे। **अग्निः**=ज्ञानी आचार्य ने उन्हें उचित परामर्श दिया। **यत्**=जब उसके सुझाव पर **पत्ये शंसन्तीम्**=पति का शंसन करनेवाली **सूर्याम्**=सूर्या

को **सविता**=जन्म देनेवाले पिता ने **मनसा**=पूरे मन से **अददात्**=सोम के लिए दे दिया। इसप्रकार सूर्या का सोम के साथ विवाह सम्पन्न हो गया।

भावार्थ—युवक की विवाह करने की इच्छा हुई। माता-पिता ने खोज की और आचार्य के परामर्श से माता-पिता ने अपनी कन्या को वर को सौंप दिया।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाह**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वधू का रथ

मनो॑ अस्या॒ अन॑ आसी॒द् द्यौरा॑सीदु॒त च्छ॒दिः।
शु॒क्रावन॒ड्वाहा॑वास्तां॒ यदया॑त्सू॒र्या पति॑म्॥ १०॥

१. **यत्**=जब **सूर्या**=सावित्री **पतिं अयात्**=पति को प्राप्त हुई तब **अस्याः**=इस सूर्या का **मनः**=मन ही **अनः आसीत्**=रथ था। यह अपने मनोरथ पर आरूढ़ होकर पतिगृह को गई, इच्छापूर्वक यह पति को प्राप्त हुई। इसका सम्बन्ध माता-पिता ने इसकी इच्छा के बिना नहीं किया। उस समय मन तो रथ था, **उत**=और **द्यौः**=मस्तिष्क **छदिः आसीम्**=छत थी। उस रथ का रक्षक मस्तिष्क था। केवल हृदय की भावुकता के कारण यह सम्बन्ध नहीं हुआ था, यह सम्बन्ध मस्तिष्क से, अर्थात् सब बातें सोच-विचारकर किया गया था। २. इस मनोमय रथ की छत मस्तिष्क बना तो **शुक्रौ**=गतिशील कर्मेन्द्रियाँ (शुक् गतौ) तथा दीप्त ज्ञानेन्द्रियाँ (शुच दीप्तौ), इस रथ के **अनड्वाहौ आस्ताम्**=वृषभ थे। इसकी कर्मेन्द्रियाँ कर्मनिपुण होती हुईं इसे सशक्त बना रही थी और ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञानप्राप्ति में कुशल होती हुईं इसे ज्ञानदीप्त कर रहीं थी। यह शक्ति व ज्ञान ही इस रथ के संचालक थे।

भावार्थ—पति के चुनाव में सूर्या भी सहमत थी। यह सम्बन्ध भावुकता के कारण न होकर सोच-समझकर किया गया था। सूर्या की कर्मेन्द्रियाँ व ज्ञानेन्द्रियाँ गृहस्थ की गाड़ी को खेंचने में सशक्त बनीं थीं।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'ज्ञान व श्रद्धा के समन्वय' से कार्य तत्परता

ऋ॒क्सा॒माभ्या॑म॒भिहि॑तौ॒ गावौ॑ ते साम॒नावै॑ताम्।
श्रोत्रे॑ ते च॒क्रे आ॑स्तां दि॒वि पन्था॑श्चराच॒रः॥ ११॥

१. गतमन्त्र के मनोमय रथ में **ते गावौ**=वे ज्ञानन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँरूप वृषभ **ऋक्सामाभ्याम्**=विज्ञान व उपासना से **अभिहितौ**=प्रेरित हुए-हुए थे, अर्थात् इन्द्रियों के सब व्यवहारों में विज्ञान व उपासना का समन्वय था। इसका प्रत्येक कार्य 'ज्ञान व श्रद्धा' के मेल से हो रहा था, इसीलिए ये इन्द्रियरूप वृषभ **सामनौ एताम्**=बड़ी शान्तिवाले होकर गति कर रहे थे, अर्थात् यह सूर्या ज्ञान व श्रद्धा से सम्पन्न होकर शान्तभाव से सब कार्यों को करती थी। २. **श्रोत्रे ते चक्रे आस्ताम्**=कान ही रथ के वे चक्र थे। 'चक्र' गति का प्रतीक है, श्रोत्र सुनने का। सूर्या सुनती थी और उसके अनुसार करती थी। उसका यह **चराचरः**=अत्यन्त क्रियाशील (भृशं चरति) **पन्थाः**=जीवन का मार्ग **दिवि**=ज्ञान में आश्रित था, अर्थात् सूर्या की सब क्रियाएँ ज्ञानपूर्वक होती थीं। वह किसीप्रकार के रुढ़िवाद में फँसी हुई न थी।

भावार्थ—'सूर्या' ज्ञान व श्रद्धा से युक्त होकर शान्तभाव से ज्ञानपूर्वक निरन्तर क्रियामय जीवनवाली होती है।

ऋषिः—**सावित्री** ॥ देवता—**विवाहः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

'प्राण, अपान, व्यान' की ठीक स्थिति

शुची॑ ते च॒क्रे या॒त्या व्या॒नो अक्ष॒ आह॑तः।
अनो॑ मन॒स्मयं॑ सू॒र्यारो॑हत्प्रय॒ती पति॑म्॥ १२॥

१. **पतिं प्रयती**=पतिगृह की ओर जाती हुई **सूर्या**=सूर्या **मनस्मयं अनः**=मन के बने रथ पर **आरोहत्**=आरूढ़ हुई, अर्थात् मन में उत्साह व प्रेम से परिपूर्ण होकर पतिगृह को हृदय से चाहती हुई चली। २. उस समय **यात्याः**=जाती हुई सूर्या के रथ के **ते चक्रे**=वे चक्र **शुची**=पवित्र प्राणापान ही थे और उन प्राणापानरूप चक्रों में **व्यानः अक्षः आहतः**=व्यान अक्ष के रूप में लगा हुआ था (प्राणापाणे पवित्रे—तै० ३.२.४.४)। प्राणापान ही शुची व पवित्र हैं। ये यदि रथ के पहिये हैं तो व्यान उनका अक्ष है। 'भूः' इति प्राणाः, 'भुवः' इति अपानाः, 'स्वः', इति व्यानः—इन ब्राह्मणग्रन्थों के शब्दों में 'भूः, भुवः, स्वः' ही प्राणापान व व्यान हैं। अध्यात्म में 'भूः' शरीर है, 'भुवः' हृदयान्तरिक्ष है, 'स्वः' मस्तिष्करूप द्युलोक है। सूर्या के ये तीनों ही लोक बड़े ठीक हैं। इनको ठीक बनाकर वह मनोमय रथ पर आरूढ़ हुई है। ये रथ ही उसे पतिगृह की ओर ले-जा रहा है।

भावार्थ—सूर्या के 'प्राण, अपान, व्यान' ठीक कार्य करनेवाले हैं, अतएव वह पूर्ण स्वस्थ व उल्लासमय मनवाली है। प्रसन्नता से पतिगृह की ओर चली है।

ऋषिः—**सावित्री** ॥ देवता—**विवाहः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

गोदान

सू॒र्याया॑ वह॒तुः प्रागा॑त्सवि॒ता यम॒वासृ॑जत्।
म॒घासु॑ ह॒न्यन्ते॒ गाव॒: फल्गु॑नीषु॒ व्यु॒॑ह्यते॥ १३॥

१. **सूर्यायाः वहतु प्रागात्**=सूर्या का दहेज (गाय के रूप में दिया जानेवाला सामान) आज गया है। **सविता**=सूर्या के जन्मदाता पिता ने **यम् अवासृजत्**=जिसको दिया है या भेजा है। **मघासु**=मघा नक्षत्र में **गावः हन्यन्ते**=दहेज के रूप में दी जानेवाली गौएँ भेजी जाती हैं (हन् गतौ) और **फल्गुनीषु**=फल्गुनी नक्षत्र में **पर्यूह्यते**=कन्या का विवाह कर दिया जाता है। २. मघा नक्षत्रवाली पूर्णिमा माघी कहलाती है और फल्गुनी नक्षत्रवाली पूर्णिमा फाल्गुनी। एवं विवाह से एक मास पूर्व गोदान-विधि सम्पन्न हो जाती है। ये गौ इसलिए दी जाती है कि गुरुकुल में शिक्षित होनेवाला यह तपःकृश युवक गोदुग्ध से आप्लावित शरीरवाला हो जाए।

भावार्थ—गोदान-विधि विवाह से एक मास पूर्व सम्पन्न हो जाती है।

ऋषिः—**सावित्री** ॥ देवता—**विवाहः** ॥ छन्दः—**विराट्प्रस्तारपङ्क्तिः** ॥

सम्बन्ध करवानेवाले मूल पुरुष के विषय में

यद॑श्विना पृच्छमा॑ना॒वया॑तं त्रिच॒क्रेण॑ वह॒तुं सू॒र्यायाः॑।
क्वैकं॑ च॒क्रं वा॑मासी॒त्क्व॒॑ दे॒ष्ट्राय॑ तस्थथुः॥ १४॥

१. **यत्**=जब **अश्विना**=लड़के के (वर के) माता-पिता (पति-पत्नी) **सूर्यायाः**=सूर्या के **वहतुम्**=विवाह के दहेज को **पृच्छमानौ**=चाहते हुए (पूछते हुए, ask for) **त्रिचक्रेण आयातम्**=तीन चक्रों से आते हैं, अर्थात् सामन्यतः वर पक्ष के माता-पिता तीन चक्कर लगाते हैं। पहले चक्कर में तो वे कन्यापक्ष के लोगों के विषय में जानकारी प्राप्त करने के लिए किसी परिचित मित्र के यहाँ आते हैं। उस समय अपना कोई व्यक्ति उनके साथ नहीं होता। ये गुप्तरूप से ही जानकारी

प्राप्त कर लौट जाते हैं। अब सम्बन्ध ठीक हो जाने पर 'वहतु' के लिए दूसरा चक्कर लगता है। इस समय बिरादरी के व नगर के सज्जन भी साथ होते हैं। तीसरा चक्कर विवाह-कार्य के लिए होता है। मन्त्र 'त्रिचक्रेण' शब्द इन्हीं चक्करों का संकेत कर रहा है। २. विवाह के समय उपस्थित सब देव (सज्जन) वर के माता-पिता से स्वभावतः पूछते हैं कि इस सम्बन्ध को करवाने में किन-किन सज्जनों का मुख्य स्थान है? आप पहले कहाँ आकर ठहरे थे? **वाम्**=आप दोनों का **एकं चक्रम्**=प्रथम चक्कर **क्व आसीत्**=कहाँ हुआ था? सूर्या के विषय में **देष्ट्राय**=विविध निर्देशों को पाने के लिए **क्व तस्थथुः**=आप किनके यहाँ ठहरे थे?

भावार्थ—विवाह में उपस्थित होने पर उन सज्जन के विषय में वर के माता-पिता से पूछते हैं कि 'आप पहले पहल आकर कहाँ ठहरे? किससे आपको सब बातों का ज्ञान हुआ?'

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**आस्तारपङ्क्तिः**॥

वृत युवक द्वारा नये माता-पिता का वरण

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप।
विश्वेदेवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितरमवृणीत पूषा॥ १५॥

१. **यत्**=जब **शुभस्पती**=सब शुभ कर्मों का रक्षण करनेवाले युवक के माता-पिता **सूर्यां वरेयम्**=सूर्या के वरण के लिए **उप अयातम्**=यहाँ समीप प्राप्त हुए तो **विश्वेदेवाः**=सब देव—समझदार लोग साथ आये हुए अनुभवी, वृद्ध सज्जन **वाम् तत्**=आप दोनों के उस कार्य की **अनु अजानन्**=अनुज्ञा देनेवाले हुए। सबने सम्बन्ध को सराहा। २. ऐसा हो जाने पर—सब बड़ों की अनुज्ञा मिल जाने पर **पूषा पुत्रः**=अपना ठीक प्रकार से पोषण करनेवाला वृत युवक—वर के रूप में आया हुआ युवक **पितरं अवृणीत**=कन्या के माता-पिता को अपने माता-पिता के रूप में वरता है।

भावार्थ—विवाह के प्रसङ्ग की पूर्ति पर वृत युवक अपने श्वसुर व श्वश्रू को माता-पिता के रूप में वरता है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रथम चक्र तथा पिछले दो चक्र

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः।
अथैकं चक्रं यद् गुहा तदद्धातय इद्विदुः॥ १६॥

१. हे **सूर्ये**=सूर्य के अनुकूल व्रतवाली कन्ये! **ते**=तेरे विषय में **द्वे चक्रे**=लगनेवाले दो चक्रों को तो **ब्रह्माणः**=सब ज्ञानी पुरुष **ऋतुथा विदुः**=उस-उस समय के अनुसार जानते ही है। दहेज लेने के लिए आनेवाला चक्र और विवाह के लिए आनेवाला चक्र तो सबको पता लगता ही है। २. **अथ**=परन्तु **एकं चक्रम्**=पहला चक्र जबकि वरपक्ष के व्यक्ति पूछताछ के लिए अपने किसी मित्र के यहाँ आकर ठहरे, **गुहा**=जो चक्र संवृत-सा है, **तत्**=उस चक्र को तो **अद्धातयः इत्**=उस चक्र के ज्ञाता ही, अर्थात् उस चक्र में भाग लेनेवाले ही **विदुः**=जानते हैं। वर के माता-पिता व उनके स्थानीय मित्र, जिनके यहाँ वे आकर ठहरते हैं, ही उस चक्र को जानते हैं। यह पूछताछ संवृत रूप में कर लेना ही व्यावहारिक दृष्टिकोण से ठीक है। 'अजी, वहाँ क्या बात ठहरी', इसप्रकार की चर्चाओं का न होना ही ठीक है।

भावार्थ—विवाह-प्रसङ्ग में सर्वप्रथम जानकारी के लिए लगाया गया चक्र गुप्त ही होता है। पिछले दो दहेज तथा विवाह के लिए लगाये जानेवाले चक्र तो सबको ज्ञात होते ही हैं।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सुबन्धु-'पतिवेदन-अर्यमा' (Marriges are made in heaven)

अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात्प्रेतो मुञ्चामि नामुतः॥ १७॥

१. विवाह में उपस्थित लोग विशेषतया वर-वधू के माता-पिता सब मिलकर इस रूप में प्रभु का उपासन करते हैं कि **अर्यमणम्**=सब शत्रुओं का नियमन करनेवाले (अरीन् यच्छति) अथवा सब-कुछ देनेवाले 'अर्यमेति तमाहुर्यो ददाति', उस प्रभु का **यज्ञामहे**=हम पूजन करते हैं। वह प्रभु ही **सुबन्धुम्**=हमारा उत्तम बन्धु है, वही इन वर-वधू को परस्पर बाँधनेवाला है। प्रभु ही तो **पतिवेदनम्**=एक युवति के योग्य पति प्राप्त कराते हैं। २. **इव**=जैसे **उर्वारुकम्**=खरबूजे को **बन्धनात्**=बन्धन से अलग करते हैं—बेल से तोड़कर अलग करते हैं, उसीप्रकार इस युवति को भी **इतः मुञ्चामि**=इधर से, अर्थात् पितृगृह से मैं मुक्त करता हूँ, **अमुतः न**=श्वसुर-गृह से नहीं। ये कन्या बिना किसी प्रकार का कष्ट अनुभव करती हुई अपने पितृगृह से छूटे और पतिगृह को प्राप्त करे।

भावार्थ—वस्तुतः प्रभुकृपा से ही एक युवति के लिए उत्तम पति की प्राप्ति होती है। युवति पितृगृह को प्रसन्नतापूर्वक छोड़कर पतिगृह को प्राप्त करे।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वर का व्रतग्रहण

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति॥ १८॥

१. विवाह हो जाने पर (युवक) प्रभु को साक्षी करके व्रत लेता है कि मैं इस युवति को **इतः**=इस पितृगृह से **प्रमुञ्चामि**=मुक्त कर रहा हूँ, **न अमुतः**=उधर से, अर्थात् पतिगृह से कभी मुक्त न करूँगा। मुक्त करना तो दूर रहा, **अमुतः सुबद्धाम् करम्**=उस पतिगृह में इसे सुबद्ध करता हूँ। इसको यही अनुभव होगा कि 'मेरा तो घर यही है, यह पतिगृह ही है, मैं ही तो इस घर की साम्राज्ञी हूँ'। २. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले व **मीढ्वः**=सब सुखों का सेचन करनेवाले प्रभो! आप ऐसा अनुग्रह कीजिए कि **यथा**=जिससे **इयम्**=यह युवति वधू **सुपुत्रा**=उत्तम सन्तानोंवाली व **सुभगा**=उत्तम ऐश्वर्यवाली **असति**=हो। यह इस घर को उत्तम सन्तानों व ऐश्वर्यों से परिपूर्ण करनेवाली बने, सचमुच गृहलक्ष्मी प्रमाणित हो।

भावार्थ—वर का यह व्रत होना चाहिए कि वह अपने प्रेम द्वारा इस वधू को घर में सुबद्ध करे, जिससे घर उत्तम सन्तानों व सौभाग्यों से सम्पन्न हो। जहाँ गृहपत्नी का आदर नहीं, पति-पत्नी में परस्पर कलह है,वह घर नरक-सा बन जाता है, वहाँ उत्तम सन्तानों व सौभाग्यों का स्थान नहीं।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वर की वधू के विषय में आकांक्षा

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवाः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोके स्योनं ते अस्तु सहसे भलायै॥ १९॥

१. वर वधू से कहता है कि **त्वा**=तुझे **वरुणस्य पाशात्**=वरुण के बन्धन से **प्रमुञ्चामि**=छुड़ाता हूँ। पिता वरुण पाशी है। पिता भी सन्तानों को नियमपाश में बाँधकर रखता है। सन्तान को

श्रेष्ठ बनाने के लिए यह आवश्यक ही है। इस वरुण के पाश से वर ही उसे छुड़ाता है। उस पाश से मैं तुझे छुड़ाता हूँ, **येन**=जिससे **सुशेवाः**=उत्तम सुख को प्राप्त करानेवाले **सविता**=जन्मदाता, प्रेरक पिता ने **त्वा अबध्नात्**=तुझे बाँधा हुआ था। पिता का यह कर्त्तव्य ही है कि वह सन्तानों को नियमपाश में बाँधकर चले। कन्याओं को सुरक्षित रखना अत्यन्त आवश्यक ही होता है। २. **ऋतस्य योनौ**=जिस घर में सब वस्तुएँ ऋतपूर्वक होती हैं, अर्थात् ठीक समय पर होती हैं, उस **सुकृतस्य लोके**=पुण्यलोक में, अर्थात् जहाँ सब कार्य शुभ ही होते हैं, उस घर में **सहसम् भलायै**=(भल परिभाषणे) सबके साथ मधुरता से भाषण करनेवाली **ते**=तेरे लिए **स्योनं अस्तु**=सुख-ही-सुख हो।

भावार्थ—वर को इस बात की प्रसन्नता है कि उसकी भाविनी पत्नी को पिता ने नियमों के बन्धनों में बाँधकर रक्खा था। अब वह पतिगृह में भी सब कार्यों को समय पर करनेवाली होगी, घर में शुभ ही कार्य होंगे और वह सबके साथ मधुरता से बोलनेवाली होगी।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पिता का कन्या को उपदेश

भगस्त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि॥ २०॥

१. पतिगृह को जाते समय पिता कन्या को अन्तिम उपदेश देता है कि **भगः**=ऐश्वर्य का उपार्जन करनेवाला यह पति **हस्तगृह्य**=पाणिग्रहण करके—यथाविधि तेरे हाथ का ग्रहण करके **त्वा इतः नयतु**=तुझे यहाँ—पितृगृह से ले-जानेवाला हो। इस समय **अश्विना**=ये तेरे धर्मपिता व धर्ममाता (श्वसुर एवं श्वश्रू) **त्वा**=तुझे **रथेन**=रथ से **प्रवहताम्**=घर की ओर ले-जानेवाले हों। २. तू **गृहान् गच्छ**=पतिगृह को जा। **यथा**=जिससे तू **गृहपत्नी असः**=पतिगृह में गृहपत्नी बन पाए। तूने वहाँ घर के सारे उत्तरदायित्व को अपने कन्धे पर लेना है, अतः **वशिनी**=अपनी सब इन्द्रियों को वश में करनेवाली **त्वम्**=तू **विदथम् आवदासि**=ज्ञानपूर्वक, समझदारी से सब कार्य करनेवाली हो। तेरी प्रत्येक बात का घर के निर्माण पर प्रभाव होना है, अतः अपना नियन्त्रण करती हुई, समझदारी से सब कार्य करती हुई सच्चे अर्थों में गृहपत्नी बनना।

भावार्थ—गृहपत्नी के लिए आवश्यक है कि (क) सब इन्द्रियों को वश में करके चले तथा (ख) सब बातें समझदारी से करे।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**जगती**॥

उत्तम सन्तान व गार्हपत्य

इह प्रियं प्रजायै ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्वाथ जिर्विर्विदथमा वदासि॥ २१॥

१. गतमन्त्र के अनुसार 'वशिनी' बनने पर **इह**=इस जीवन में **प्रजायै**=उत्तम सन्तान के लिए **ते**=तेरा **प्रियम्**=आनन्द **समृध्यताम्**=वृद्धि को प्राप्त हो। तेरे प्रसन्न होने पर ही सन्तान उत्तम होगी, माता की प्रसन्नता सन्तान के सौन्दर्य का कारण बनती है। **अस्मिन् गृहे**=इस घर में **गार्हपत्याय जागृहि**=घर के कर्त्तव्यों के पालन व रक्षणात्मक कर्मों के लिए तू सदा जागरित रहे। पत्नी की सफलता व सम्मान के दो ही मूलसूत्र हैं—एक तो वह उत्तम सन्तान को जन्म देनेवाली हो, सन्तान के अभाव में गृह आनन्दमय नहीं होता और पति-पत्नी के परस्पर प्रेम में भी कमी आ जाती है तथा दूसरी बात यह कि वह सदा सावधान व जागरित रहे। घर में

उसके प्रमाद से सौभाग्य का निवास नहीं होता। उसकी जागृति ही घर को समृद्ध बनाती है। २. इस गृहस्थ में **एना पत्या**=इस पति के साथ **तन्वं सं स्पृशस्व**=तू अपने शरीर व रूप को एक कर दे, तू उसकी अर्द्धाङ्गिनी ही बन जा। तुम दोनों अब दो न रहकर एक हो जाओ और इसप्रकार परस्पर मेल से गृहस्थ को सुन्दरता से बिताकर **अथ**=अब **जिर्विः**=जरावस्था को प्राप्त करने पर **विदथम्**=ज्ञान को **आवदासि**=उच्चरित करनेवाली होओ, अर्थात् वानप्रस्थ बनकर ज्ञान का प्रसार करनेवाली बन। गृहस्थ के साथ ही तेरा जीवन समाप्त न हो जाए।

भावार्थ—एक युवति गृहपत्नी बनने पर उत्तम सन्तान की प्राप्ति के आनन्द का अनुभव करे और घर के कार्यों में सदा जागरूक रहे। गृहस्थ को सफलता से बिताकर वनस्थ होने पर ज्ञान के क्षेत्र में विचरण करे।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वर-वधू को आशीर्वाद

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्य॑श्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वस्तकौ॥ २२॥

१. हे वर-वधू! तुम दोनों **इह एव स्तम्**=यहाँ गृहस्थ में सुन्दर जीवनवाले होओ **मा वि यौष्टम्**=एक-दूसरे से पृथक् मत होओ, किसी एक का अल्पायुष्य तुम्हें वियुक्त करनेवाला न हो जाए। **विश्वम् आयुः व्यश्नुतम्**=तुम पूर्ण आयु को प्राप्त करनेवाले बनो। २. **पुत्रैः नप्तृभिः**=पुत्रों व नातियों से **क्रीडन्तौ**=खेलते हुए **मोदमानौ**=आनन्द का अनुभव करते हुए **स्वस्तकौ**=(सु+अस्तक) उत्तम गृहवाले बनो।

भावार्थ—पति-पत्नी गृह पर ही सारे अतिरिक्त समय को बिताएँ और अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए पूर्ण जीवन को प्राप्त करें। घर में सन्तानों की क्रीड़ा, वृद्धि का व घर के सौभाग्य का कारण बने।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**सौमार्कौ**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

दम्पती का कार्यविभाग

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायसे नवः॥ २३॥

१. घर में पहुँचकर **एतौ**=ये दोनों युवक-युवति (पति-पत्नी) **शिशू**=स्वाध्याय के द्वारा अपनी बुद्धि को तीव्र बनानेवाले होते हुए **मायया**=प्रज्ञान के द्वारा **पूर्वापरं चरतः**=(पूर्वस्मात् उत्तरं समुद्रम्) ब्रह्मचर्य से गृहस्थ में प्रवेश करते हैं। ब्रह्मचर्याश्रमरूप प्रथम समुद्र को तैरकर गृहस्थाश्रमरूप द्वितीय समुद्र में आते हैं। इस **अर्णवम्**=समुद्र में **क्रीडन्तौ**=क्रीडा की मनोवृत्ति बनाकर सब कर्त्तव्य-कर्मों में गतिवाले होते हैं। इस मनोवृत्ति के कारण ही ये ऊँच-नीच में घबरा नहीं जाते। इस वृत्ति के अभाव में वस्तुतः संसार बड़ा कष्टमय प्रतीत होने लगता है। २. इन पति-पत्नी में **अन्यः**=एक पति तो **विश्वा भुवना विचष्टे**=घर में प्रवेश करनेवाले सब प्राणियों का ध्यान (look after) करता है। पति का कार्य रक्षण ही तो है (पा रक्षणे)। घर में सब आवश्यक सामग्री का वह व्यवस्थापन करता है। **अन्यः**=गृहस्थनाटक का दूसरा मुख्य पात्र 'पत्नी' **ऋतून् विदधत्**=गर्भाधान के लिए उचित समयों को धारण करती हुई **नवः जायसे**=फिर नवीन जन्म लेती है। इस प्रकार वह एक नये प्राणी को संसार में लाती है। पत्नी का कार्य उत्कृष्ट सन्तान को जन्म देना है और पति ने उस सन्तान के रक्षण व पोषण के सब

साधनों को जुटाने का ध्यान करना है।

भावार्थ—समझदार पति-पत्नी क्रीड़क की मनोवृत्ति से चलते हुए गृहस्थ को बड़ी सुन्दरता से निभाते हैं। पत्नी एक नव-सन्तान को जन्म देती है तो पति उसके रक्षण व पोषण का उत्तरदायित्व लेता है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**चन्द्रमा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पति

नवो॑नवो भवसि॒ जाय॑मा॒नोऽह्ना॑ के॒तुरु॒षसा॑मे॒ष्यग्र॑म्।
भा॒गं दे॒वेभ्यो॒ वि द॑धास्या॒यन्प्र च॑न्द्रमस्तिरसे दी॒र्घमायुः॥ २४॥

१. मानव-स्वभाव कुछ इस प्रकार का है कि वह एक वस्तु से कुछ देर पश्चात् ऊब जाता है। 'गृहस्थ में पति-पत्नी परस्पर ऊब न जाएँ', इस दृष्टिकोण से **जायमानः**=अपनी शक्तियों का विकास करता हुआ तू (पति) **नवः नवः भवसि**=सदा नवीन बना रहता है। तेरा जीवन पुराना-सा (जीर्ण-सा) नहीं हो जाता। **अह्नां केतुः**=दिनों का तू प्रकाशक होता है—दिनों को तू प्रकाशमय बनाता है। स्वाध्याय के द्वारा अधिकाधिक प्रकाशमय जीवनवाला होता है। **उषसां अग्रम् एषि**=उषाओं के अग्रभाग में आता है, अर्थात् बहुत सवेरे ही प्रबुद्ध होकर क्रियामय जीवनवाला होकर चलता है। २. तू **आयन्**=गतिशील होता हुआ **देवेभ्यः भागं विदधासि**=देवों के लिए भाग को विशेषरूप से धारण करता है, अर्थात् यज्ञशील बनता है। यज्ञों को करके यज्ञशेष का ही सेवन करता है। इसप्रकार हे **चन्द्रमः**=आह्लादमय जीवनवाले पते! तू **दीर्घं आयुः प्रतिरसे**=दीर्घ जीवन को अत्यन्त विस्तृत करता है। मन की प्रसन्नता तेरे दीर्घ जीवन का कारण बनती है।

भावार्थ—पति अपनी शक्तियों का विकास करता हुआ सदा स्तुत्य (नव) जीवनवाला हो। दिन को ज्ञान के प्रकाश से उज्ज्वल बनाए, प्रातः जागरित होकर कार्यप्रवृत्त हो, यज्ञशील बने तथा प्रसन्न मनोवृत्तिवाला होता हुआ दीर्घ जीवन प्राप्त करे।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**वधूवासः संस्पर्शमोचनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अतिथियज्ञ व मानस पवित्रता

परा॑ देहि शामु॒ल्यं॑ ब्रह्मभ्यो॒ वि भ॑जा॒ वसु॑।
कृ॒त्यैषा प॒द्वती॑ भू॒त्वा जा॒या वि॑शते॒ पति॑म्॥ २५॥

१. हे नवविवाहित पुरुष! तू **शामुल्यम्**=शमन करने योग्य मानस दुर्भाव को—मलिनता को **परादेहि**=दूर कर दे, **ब्रह्मभ्यः**=ज्ञानी ब्राह्मणों के लिए **वसु विभजा**=निवास के लिए अवश्यक धन देनेवाला बन, यही तेरा ब्रह्मयज्ञ हो। तेरे घर पर विद्वान् ब्राह्मण आते रहें, उनसे तुझे उचित प्रेरणा मिलती रहे। तेरा यह अतिथियज्ञ नववधू को भी उत्तम प्रेरणाएँ प्राप्त कराएगा। तुझे भी सदा मानस दुर्भावों को दूर करने में सहायक होगा। २. **एषा जाया**=यह पत्नी **कृत्या**=(कृती छेदने) काम-क्रोधादि शत्रुओं का छेदन करनेवाली होती हुई **पद्वती भूत्वा**=(पद् गतौ) प्रशस्त चरणोंवाली—उत्तम क्रियाओंवाली होकर **पतिं विशते**=पति के साथ एक हो जाती है। पति-पत्नी में द्वैत न रहकर ऐक्य उत्पन्न होता है। पत्नी उसकी अर्द्धाङ्गिनी ही हो जाती है।

भावार्थ—गृहपति को चाहिए कि मन को सदा पवित्र बनाने के लिए यत्नशील हो। अतिथियज्ञ करता हुआ ज्ञानी ब्राह्मणों से सदा उत्तम प्रेरणा प्राप्त करे, ऐसा होने पर पत्नी भी काम-क्रोधादि का छेदन करती हुई क्रियाशील बनकर पति के साथ एक हो जाती है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अनुरागयुक्त क्रियाशील जीवन

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते॥ २६॥

१. **नीललोहितम्**=(पूर्वं नीलं, पश्चात् लोहितम्) ब्रह्मचर्याश्रम में जो हृदय सांसारिक रंगों में न रंगा जाकर बिल्कुल नीरंग (कृष्ण)-सा था अब गृहस्थ में आने पर वह लोहितम्=कुछ-कुछ प्रेम की लालिमावाला **भवति**=होता है। 'अनुराग' (प्रेम) युक्त होता है। पति-पत्नी के परस्पर अनुरागयुक्त जीवन में **कृत्यासक्तिः**=कर्त्तव्य-कर्मों के प्रति रुचि **व्यज्यते**=विशेषरूप से दीप्त हो जाती है। पति-पत्नी मिलकर घर को स्वर्ग बनाने का निश्चय करते हैं और आलस्यशून्य होकर क्रियाओं में तत्पर होते हैं। २. हृदय में अनुराग तथा क्रियाशीलता होने पर **अस्याः**=इस नव-विवाहिता पत्नी के **ज्ञातयः एधन्ते**=सब बन्धु बढ़ते हैं, उन्हें प्रसन्नता का अनुभव होता है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि पति **बन्धेषु बध्यते**=उस युवति का पति उसके प्रति प्रेम-बन्धनों में बद्ध हो जाता है। पत्नी का विशुद्ध प्रेम तथा क्रियाशीलता पति को उसकी ओर आकृष्ट करते हैं।

भावार्थ—पत्नी अनुरागयुक्त हृदयवाली व क्रियाशील जीवनवाली होती हुई बन्धु-बान्धवों की प्रसन्नता का और पति के आकर्षण का कारण बनती है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**वधूवासः संस्पर्शमोचनम्**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

भोगासक्ति का दुष्परिणाम

अश्लीला तनूर्भवति रुशती पापयामुया।
पतिर्यद्ध्वो ३ वाससः स्वमङ्गमभ्यूर्णुते॥ २७॥

१. एक युवक जिसका कि **तनूः**=शरीर **रुशती**=देदीप्यमान होता है, यह **यत्**=यदि **पतिः**=पति बनने पर, गृहस्थ में प्रवेश करने पर, **वध्वः वाससः**=वधू के वस्त्रों से **स्वं अङ्गं अभ्यूर्णुते**=अपने अङ्गों को आच्छादित करता है, अर्थात् पत्नी के वस्त्रों को ओढ़कर घर पर ही बैठा रहता है, पत्नी के साथ प्रेमालाप में ही परायण रहता है तो उसका शरीर **अमुया पापया**=उस पापवृत्ति से **अश्लीला भवति**=श्रीशून्य हो जाता है। २. वधू के वस्त्रों को पहनकर घर में ही बैठे रहने का भाव प्रेमासक्त होकर अकर्मण्य बन जाने से है। विवाहित हो जाने पर भी एक युवक हृदय-प्रधान बनकर अपने कर्त्तव्यों को उपेक्षित न कर दे। पत्नी के प्रति आसक्ति उसे कर्त्तव्यविमुख न बना दे। ऐसा होने पर जीवन भोगप्रधान होकर नष्ट श्रीवाला हो जाता है।

भावार्थ—नवविवाहित युवक को चाहिए कि भोगप्रधान जीवनवाला न बन जाए। हर समय घर पर ही न बैठा रहे।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आशसन, विशसन, अधिविकर्तन

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम्।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मोत शुम्भति॥ २८॥

१. (क) **आशसनम्**=घर में सब प्रकार से उन्नति की इच्छा करता हुआ व तदनुसार शासन करना, अर्थात् घर के अन्दर सब कार्यों के ठीक प्रकार से होने की व्यवस्था करना, (ख) **विशसनम्**=विशिष्ट इच्छाओंवाला होना, अर्थात् घर की उन्नति के लिए आवश्यक सब पदार्थों

को जुटाने की कामना करना तथा सब आवश्यक कार्यों को करना। (ग) **अथो**=और निश्चय से **अधिविकर्तनम्**=वस्त्रों को विविधरूपों में काटने आदि का काम करना। **सूर्यायाः**=सूर्यसम दीप्त जीवनवाली इस गृहिणी के **रूपाणि पश्य**=इन रूपों को देखिए। सूर्या घर में समुचित शासन रखती है, उत्कृष्ट शब्दोंवाली होती है और कपड़ों के सीने आदि के कार्यों को स्वयं भी करती है। २. **उत**=और **ब्रह्मा**=घर का निर्माण करनेवाला समझदार पति **तु**=तो **तानि**=सूर्या के उन सब कार्यों को **शुम्भति**=शोभायुक्त करता है। उन कार्यों में थोड़ी बहुत कमी होती भी है तो उसे उचित परामर्श देकर दूर करने का प्रयत्न करता है।

भावार्थ—गृहपत्नी (क) घर का समुचित शासन करती है, (ख) नई-नई इच्छाएँ करती हुई घर को उन्नत करने का प्रयत्न करती है (ग) वस्त्रों के सीने आदि की व्यवस्था को स्वयं करती है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती**॥

पत्नी द्वारा भोजन की समुचित व्यवस्था

तृष्टमेतत्कटुकमपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे।
सूर्यां यो ब्रह्मा वेद स इद्वाधूयमर्हति॥ २९॥

१. सूर्या का सर्वमहान् कर्त्तव्य यह है कि भोजन की व्यवस्था को इसप्रकार सुन्दर व व्यवस्थित बनाये रक्खे कि घर में कोई अस्वस्थ हो ही नहीं। वह अन्नों के विषय में यह ध्यान रक्खे कि (क) **एतत् तृष्टम्**=यह गरम भोजन अत्यन्त प्यास पैदा करनेवाला है। (ख) **कटुकम्**=ये कटु है, काटनेवाला है। (ग) **अपाष्ठवत्**=यह फोकवाला है या कटिला-सा है (घ) **विषवत्**=यह विषैले प्रभाव को पैदा करनेवाला है, अतः **एतत अत्तवे न**=यह खाने योग्य नहीं। इसप्रकार वधू भोजन का पूरा ध्यान करे। २. पति को भी चाहिए कि वह पत्नी की मनोवृत्ति को समझे। समझकर इसप्रकार वर्ते कि पत्नी का जी दुःखी न हो। इस **सूर्याम्**=ज्ञानदीप्त, क्रियाशील वधू को **यः ब्रह्मा वेद**=जो विशाल हृदयवाला ज्ञानी पुरुष ठीक प्रकार से समझता है **सः इत्**=वह ही **वाधूयम् अर्हति**=इस वधू-प्राप्ति के कर्म के योग्य है। नासमझ पति पत्नी को कभी प्रसन्न नहीं रख सकता।

भावार्थ—वधू पाकस्थान की अध्यक्षता करती हुई न खाने योग्य अन्नों को घर से दूर रक्खे। पति भी पत्नी की मनोवृत्ति को समझता हुआ अपने व्यवहार से उसे सदा प्रसन्न रक्खे।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

गृह में उत्तम वस्त्रों का प्राप्त करना

स इत्तत्स्योनं हरति ब्रह्मा वासः सुमङ्गलम्।
प्रायश्चित्तिं यो अध्येति येन जाया न रिष्यति॥ ३०॥

१. **सः ब्रह्मा इत्**=वह अपने हृदय को विशाल बनानेवाला ज्ञानी पुरुष ही **तत्**=उस **स्योनम्**=सुखकर **सुमंगलम्**=उत्तम मंगल के साधनभूत **वासः**=वस्त्र को **हरति**=घर में प्राप्त कराता है, **येन**=जिस वस्त्र से **जाया न रिष्यति**=पत्नी हिंसित नहीं होती। पत्नी के लिए वस्त्र सुखकर भी हों, अच्छे भी लगें और स्वास्थ्य-रक्षा के लिए भी आवश्यक हों। २. वह ब्रह्मा इन वस्त्रों को प्राप्त करता है **यः**=जो **प्रायश्चित्तिं अध्येति**='प्रायोनाम तपः प्रोक्तं चित्तं निश्चय उच्यते। तपोनिश्चयसंयोगात् प्रायश्चित्तमितीर्यते॥' तपस्यापूर्वक जीवन बिताने का निश्चय करता है, इस बात को भूलता नहीं (अध्येति=remembers) कि आराम का जीवन विनाश की ओर ले-जाता

है। Ease, disease का कारण है। यह तपस्वी जीवन घरवालों के लिए अति उत्तम प्रभाव पैदा करता है।

भावार्थ—विशाल हृदयवाला पति इस बात का ध्यान करता है कि पत्नी को आवश्यक वस्तुओं की कमी न हो। वह अपना जीवन तपस्यापूर्वक बिताता है, यह तपस्या ही उसे ब्रह्मा बनाती है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

आशीर्वाद के तीन शब्द

युवं भगं सं भरतं समृद्धमृतं वदन्तावृतोद्येषु।
ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय चारु संभलो वदतु वाचमेताम्॥ ३१॥

१. पति-पत्नी के लिए प्रेरणा प्राप्त कराते हुए उपस्थित विद्वान् कहते हैं कि **युवम्**=तुम दोनों **ऋतोद्येषु**=जहाँ ऋत ही बोला जाता है, जिनमें अनृत (असत्य) का व्यवहार नहीं होता, उन व्यवहारों में **ऋतं वदन्तौ**=सत्य बोलते हुए **समृद्धम्**=सम्यक् बढ़े हुए **भगं संभरतम्**=ऐश्वर्य का संभरण करो। पति-पत्नी घर को ऋत व्यवहारों द्वारा अति समृद्ध बनाएँ। २. वे विद्वान् प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि हे **ब्रह्मणस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! **अस्यै**=इस पत्नी के लिए **पतिं रोचय**=पति को प्रेमास्पद बनाइए, यह पति के लिए प्रीतिवाली हो। पति भी **संभलः**=(भल परिभाषणे) उत्तम भाषणवाला होता हुआ **एतां वाचम्**=इस वाणी को **चारु वदतु**=सुन्दरता से ही बोले। इसकी वाणी में कभी भी कटुता का अंश न हो।

भावार्थ—पति-पत्नी ऋत व्यवहारों में ऋत (सत्य) ही बोलते हुए घर को समृद्ध करें। पत्नी पति के प्रति प्रीतिवाली हो। पति मधुरवाणी ही बोले।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सोमवर्चसः गावः

इहेदसाथ न परो गमाथेमं गावः प्रजया वर्धयाथ।
शुभं यतीरुस्रियाः सोमवर्चसो विश्वे देवाः क्रन्निह वो मनांसि॥ ३२॥

१. हे **गावः**=गौवो! **इह इत् असाथ**=तुम इस घर में ही होओ, **परः न गमाथ**=इस घर से दूर न जाओ। तुम **इमम्**=इस गृहपति को **प्रजया वर्धयाथ**=उत्तम सन्तान से बढ़ानेवाली होओ। गोदुग्ध का सेवन 'स्वस्थ शरीर, निर्मल मनवाली व दीप्त मस्तिष्क' सन्तान को प्राप्त कराता है। २. **शुभं यतीः**=उत्तमता से गमन करती हुई (वायुर्येषां सहचारं जुजोष) शुद्ध वायु में चिरागाहों में चरने के लिए जाती हुई **उस्रियाः**=ये गौएँ **सोमवर्चसः**=सोम वर्चस्वाली हैं—शान्तियुक्त शक्ति देनेवाली हैं। **इह**=इस संसार में **विश्वेदेवाः**=देववृत्ति के सब पुरुष **वः मनांसि क्रन्**=तुम्हारे मनों को करें, अर्थात् तुम्हें घरों पर रखने के लिए हृदय से इच्छा करें। सब समझदार लोग यह समझ लें कि गौओं से घर सब प्रकार से समृद्ध बनता है।

भावार्थ—गौएँ सौम्य दुग्ध देती हुई घर की समृद्धि व उत्तम सन्तति का साधन बनती हैं। सब देव इन्हें घरों पर रखने की कामना करते हैं।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'पोषक व धारक' गौ

इमं गावः प्रजया सं विशाथायं देवानां न मिनाति भागम्।
अस्मै वः पूषा मरुतश्च सर्वे अस्मै वो धाता सविता सुवाति॥ ३३॥

१. हे **गावः**=गौओ! **इमम्**=इस नव-गृहस्थ को **प्रजया सं विशाथ**=उत्तम सन्तति के हेतु से प्राप्त होओ। **अयम्**=यह **देवानां भागं न मिनाति**=देवों के भाग को हिंसित नहीं करता, अर्थात् देवयज्ञ आदि में प्रमाद न करता हुआ, देवों के लिए उनका भाग देकर बचे हुए यज्ञशेष का ही सेवन करता है। 'तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः'। इस गौ के द्वारा ही घृतादि प्राप्त कराकर देवयज्ञादि यज्ञ सम्पन्न कराये जाते हैं। **अस्मै**=इस गृहस्थ युवक के लिए **वः**=तुम्हें **पूषा**=पोषक प्रभु **च**=और **सर्वे मरुतः**=सब मरुत् प्राण प्राप्त कराते हैं, अर्थात् तुम्हारे दूध का प्रयोग करता हुआ ही यह अपने शरीर का उचित पोषण कर पाएगा तथा प्राणशक्ति के वर्धन में समर्थ होगा। **अस्मै**=इस गृहस्थ युवक के लिए **वः**=तुम्हें **धाता**=धारण करनेवाला **सविता**=शक्तियों को उत्पन्न करनेवाला प्रभु **सुवाति**=जन्म देता व प्रेरित करता है। प्रभु ने गौओं को वस्तुतः इसीलिए तो बनाया है कि ये इन गृहस्थों को उत्तम सात्त्विक दूध देकर उनका धारण करें और उनके शरीर में शक्तियों को उत्पन्न करें।

भावार्थ—गोदुग्ध का सेवन उत्तम सन्तति को प्राप्त कराता है। यह शरीर का पोषण व धारण करता है, इससे प्राणशक्ति का वर्धन होता है। इसके द्वारा ही हम यज्ञादि को सुचारुरूप से कर पाते हैं।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः**॥

'अनृक्षरा ऋजवः' पन्थानाः

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्थानो येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
सं भगेन समर्यम्णा सं धाता सृजतु वर्चसा॥ ३४॥

१. कन्या के माता-पिता चाहते हैं कि हमारी कन्या के **पन्थानः**=मार्ग **अनृक्षराः**=कण्टकरहित **ऋजवः**=सरल **सन्तु**=हों, अर्थात् यह पतिगृह में जाकर कण्टकरहित, कुटिलता से शून्य मार्गों से चलनेवाली हो। ये पतिगृह में काँटे बोनेवाली न बन जाए। यह उन मार्गों से चले, **येभिः**=जिनके कारण **सखायः**=उसके पति के मित्र भी **वरेयम्**=हमारी अन्य कन्याओं के वरण के लिए **नः यन्ति**=हमारे समीप प्राप्त होते हैं। २. कन्या पक्षवाले कामना करते हैं कि **धाता**=सबका धारण करनेवाला प्रभु हमारी कन्या को **संसृजतु**=ऐश्वर्यशाली, धन कमाने की योग्यता के साथ संसृष्ट करे। **अर्यम्णा सम्**=(अरीन् यच्छति) शत्रुओं का संयम करनेवाले काम-क्रोध को जीत लेनेवाले युवक के साथ संसृष्ट करे तथा **वर्चसा सम्**=शक्ति के पुञ्ज प्रभु के साथ संसृष्ट करे।

भावार्थ—युवति के माता-पिता की कामना होती है कि हमारी कन्या पतिगृह में इसप्रकार कण्टकशून्य सरल मार्गों से चले कि वर के सभी मित्र हमारी अन्य कन्याओं को प्राप्त करने की कामनावाले हों। हमारी कन्या को 'सौभाग्यसम्पन्न, संयमी, वर्चस्वी' पति प्राप्त हो।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'अक्ष, सुरा, गौ' में स्थित वर्चस्

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम्।
यद्गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसावतम्॥ ३५॥

१. **यत्**=जो **च**=निश्चय से **वर्चः**=तेज **अक्षेषु**=ज्ञानेन्द्रियों में व ज्ञानों में **आहितम्**=स्थापित हुआ है **च**=और **यत्**=जो तेज **सुरायाम्**=ऐश्वर्य में (आहितम्) स्थापित हुआ है, **यत् वर्चः**=जो तेज **गोषु**=गौ आदि पशुओं में है, हे **अश्विना**=प्राणापानो! **तेन वर्चसा**=उस तेज से **इमाम्**=इस युवति को **अवताम्**=रक्षित करो। यह युवति ब्राह्मणों के ज्ञान से सम्पन्न हो, क्षत्रियों के ऐश्वर्य

से, ईशशक्ति (शासन-शक्ति) से सम्पन्न हो तथा वैश्यों के गौ आदि पशुओं से सम्पन्न हो। ज्ञान-सम्पन्न होकर यह समझदारी से सारा व्यवहार करे। शासन-शक्ति-सम्पन्न होने से घर को सुव्यवस्थित रक्खे तथा गौ आदि पशुओं के द्वारा घर में पौष्टिक आहार की व्यवस्था करनेवाली हो।

भावार्थ—पत्नी बननेवाली युवति में तीन गुण आवश्यक हैं—ज्ञान, शासन-शक्ति तथा गौ आदि पशुओं से प्रेम (न कि कुत्तों से)। इसके लिए प्राण-साधना सहायक है।

ऋषिः—**सावित्री** ॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः** ॥ छन्दः—**अनुष्टुप्** ॥

प्राणसाधना द्वारा वर्चस् की प्राप्ति

येन॑ महान॒घ्न्या ज॒घन॑मश्विना॒ येन॑ वा॒ सुरा॑।
येना॒क्षा अ॒भ्यषि॑च्यन्त॒ तेने॒मां वर्च॑सावतम्॥ ३६॥

१. **येन वर्चसा**=जिस वर्चस् से, शक्ति से **महान् अघ्न्या**=महनीय (पूजनीय) व न हन्तव्य गौ का **जघनम्**=जघन प्रदेश (निचला दुग्धाशय प्रदेश) सिक्त होता है, **वा**=अथवा **येन**=जिस वर्चस् से **सुरा**=ऐश्वर्य से सिक्त होता है, **येन**=जिस वर्चस् से **अक्षाः**=ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान-**अभ्यषिच्यन्त**=सिक्त होती हैं, **तेन**=उस वर्चस् से हे **अश्विना**=प्राणापानो! **इमाम् अवताम्**=इस युवति को प्रीणित करो। २. एक युवति प्राणसाधना करती हुई उस वर्चस् को प्राप्त करे जो अहन्तव्य गौ के दुग्धाशय को प्राप्त है, जो ऐश्वर्यशाली को प्राप्त है और जो ज्ञानियों को प्राप्त है।

भावार्थ—एक गृहस्थ युवति के लिए प्राणसाधना आवश्यक है। यह प्राणसाधना ही तेजस्विता प्राप्त करानेवाली सर्वोत्तम क्रिया है।

ऋषिः—**सावित्री** ॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः** ॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्** ॥

अनिध्म अग्नि

यो अ॑नि॒ध्मो दी॒दय॑द॒प्स्व१॒॑न्तर्यं विप्रा॑स॒ ईड॑ते अध्व॒रेषु॑।
अपां॑ नपा॒न्मधु॑मतीर॒पो दा॒ या॒भि॒रिन्द्रो॑ वावृ॒धे वी॒र्या॑वान्॥ ३७॥

१. **यः**=जो **अनिध्मः**=बिना ही इध्मों-(काष्ठों)-वाला होता हुआ भी **अप्सु अन्तः दीदयत्**=सब प्रजाओं के अन्दर दीप्त होता है, **यम्**=जिसको **विप्रासः**=ज्ञानी लोग **अध्वरेषु**=यज्ञों में **ईडते**=पूजते हैं, वह **अपां नपात्**=हमारी शक्तियों को न नष्ट होने देनेवाला प्रभु हमारे लिए **मधुमतीः अपाः दाः**=जीवन को मधुर बनानेवाले रेतःकणों को दें, **याभिः**=जिन रेतःकणों से **इन्द्रः**=यह जितेन्द्रिय पुरुष **वावृधे**=अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त करता है और **वीर्यवान्**=शक्तिशाली होता है। २. प्रभुरूप अग्नि हम सबके हृदयों में प्रकाशित हो रही है, इस अग्नि के उद्बोधन के लिए काष्ठों की आवश्यकता नहीं होती। ये प्रभु ज्ञानियों से यज्ञों में उपासित होते हैं। उपासित प्रभु हमें वासनाओं से रक्षित करके उन शक्तिकणों से युक्त करते हैं, जो हमारे जीवनों को मधुर व वृद्धिवाला बनाते हैं।

भावार्थ—हम हृदयों में प्रभु के प्रकाश को देखने के लिए यत्नशील हों तथा यज्ञों में प्रवृत्त होकर प्रभु का उपासन करें। प्रभु हमें जितेन्द्रिय बनाकर उन शक्तिकणों से युक्त करेंगे जो हमारे जीवनों को मधुर व वृद्धिवाला बनाएँगे।

ऋषिः—**सावित्री** ॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः** ॥ छन्दः—**पुरोबृहतीत्रिपदापरोष्णिक्** ॥

नीरोगता व शुभ व्यवहार

इ॒दम॒हं रुश॑न्तं ग्रा॒भं त॑नू॒दूषि॒मपो॑हामि। यो भ॒द्रो रो॑च॒नस्तमुद॑चामि॥ ३८॥

१. **इदम्**=(इदानीम्) अब प्रभु की उपासना के अन्तर **अहम्**=मैं **रुशन्तम्**=नष्ट करनेवाले,

तनूदूषिम्=शरीर को दूषित करनेवाले, **ग्राभम्**=शरीर को पकड़ लेनेवाले (जकड़ लेनेवाले) रोग को **अप ऊहामि**=शरीर से दूर करता हूँ। प्रभु की उपासना रेतःकणों के रक्षण के द्वारा हमें नीरोग बनाती है। २. रोगों को दूर करके **यः भद्रः रोचनः**=जो कल्याण व सुख देनेवाला, जीवन को दीप्त बनानेवाला व्यवहार है, **तम् उदचामि**=उसे उत्कर्षेण प्राप्त होता हूँ।

भावार्थ—हम नीरोग बनकर कल्याण करनेवाले यशस्वी व्यवहारों में प्रवृत्त हों।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

युवति का स्नान व अग्नि परिक्रमा के अनन्तर पतिगृह प्रवेश

आस्यै ब्राह्मणाः स्नपनीर्हरन्त्ववीरघ्नीरुदजन्त्वापः।
अर्यम्णो अग्निं पर्येतु पूषन्प्रतीक्षन्ते श्वशुरो देवरश्च॥ ३९॥

१. **आस्यै**=इस युवति के लिए **ब्राह्मणाः**=ज्ञानी पुरुष **स्नपनीः**=स्नान कराने के साधनभूत जलों को **आहरन्तु**=प्राप्त कराएँ, जीवन को शुद्ध बनाने के साधनभूत ज्ञान-जलों को इसके लिए दें तथा इसे **अवीरघ्नीः अपाः उत् अजन्तु**=वीर सन्तानों को न नष्ट होने देनेवाले ज्ञान-जल उत्कर्षेण प्राप्त हों। इसे उत्तम सन्तान के निर्माण के पालन के लिए आवश्यक ज्ञान भी अवश्य प्राप्त कराया जाए। २. **अर्यम्णः अग्निं परि एतु**=(अर्यमा अरीन् यच्छति) शत्रुओं के नियन्ता प्रभु अग्नि की यह परिक्रमा करे। अग्नि जैसे व्रत पर दृढ़ है, इसीप्रकार अपने व्रतों पर दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा करे। 'नाधः शिखा याति कदाचिदेव' अग्नि की ज्वाला कभी नीचे नहीं जाती, इसीप्रकार यह युवति भी ऊर्ध्वगति का व्रत ले। ऐसी 'ज्ञान-जल में स्नात', सन्तान के निर्माण व पालन के ज्ञान से युक्त, उत्कृष्ट आचरणवाली युवति की ही **पूषन्**=पोषक पति **श्वशुरः**=श्वसुर भावी पिता **च देवरः**=और पति के छोटे भाई **प्रतीक्षन्ते**=प्रतीक्षा करते हैं, ऐसी कामना करते हैं कि उनके गृह में ऐसी युवति ही आये।

भावार्थ—एक युवति में पत्नी बनने के योग्य योग्यता के लिए आवश्यक है कि वह 'ज्ञान-जल स्नात' हो, सन्तान निर्माण के आनन्दों को समझती हो और उत्तम कुलीन आचरणवाली हो।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पत्नी के आवश्यक गुण

शं ते हिरण्यं शमु सन्त्वापः शं मेथिर्भवतु शं युगस्य तर्द्म।
शं त आपः शतपवित्रा भवन्तु शमु पत्या तन्वं१ सं स्पृशस्व॥ ४०॥

१. हे वधु! **हिरण्यम्**=(हिरण्यं वै ज्योतिः) हितरमणीय ज्ञान का प्रकाश **ते शम्**=तेरे लिए शान्तिकर हो, **उ**=और **आपः** (आपो वै प्राणाः—शत० ३.८.२.४) प्राणशक्तियाँ **शं सन्तु**=शान्तिकर हों। तेरा मस्तिष्क ज्ञान-ज्योति से उज्ज्वल हो तो शरीर शक्ति-सम्पन्न बने। **मेथिः**=समझदारी (Understanding) **शं भवतु**=शान्ति देनेवाली हो, तू घर में समझदारी से वर्तनेवाली हो। **युगस्य**=राग-द्वेषरूप शत्रुओं के जोड़े का **तर्द्म**=हिंसन **शम्**=शान्तिकर हो। राग-द्वेष, काम-क्रोधरूप शत्रुओं का हिंसन करके तू शान्त जीवनवाली हो। 'तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ' ये राग-द्वेष ही तो शत्रु हैं। **शतपवित्रा**=शतवर्षपर्यन्त जीवन को पवित्र बनानेवाले **आपः**=रेतःकण **ते सं भवन्तु**=तेरे लिए शान्तिकर हों, **उ**=और **शम्**=शान्त जीवनवाली बनकर **पत्या**=पति के साथ **तन्वं संस्पृशस्व**=शरीर से स्पर्शवाली हो। पवित्र शान्तभाव से ही उत्तम सन्तान की उत्पत्ति के लिए तेरा पति से सम्बन्ध हो।

भावार्थ—पत्नी 'ज्ञानज्योति, प्राणशक्ति, समझदारी, काम-क्रोध-विनाश तथा रेतःकणों' से युक्त होकर पवित्र शान्तभाव से पति के साथ सम्पर्कवाली हो।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

दोष-निराकरण

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्वाकृणोः सूर्यत्वचम्॥ ४१॥

१. हे **शतक्रतो**=अनन्त प्रज्ञान व शक्तिवाले प्रभो! **रथस्य खे**=शरीररूप रथ के छिद्र में **अनसः खे**=(अन प्राणने), प्राणमयकोश के छिद्र में—इन्द्रियों के छिद्र में (प्राणाः वाव इन्द्रियाणि) **युगस्य खे**=आत्मा व इन्द्रियों को परस्पर जोड़नेवाले मन के छिद्र में, हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं के विद्रावक प्रभो! इस **अपालाम् (अप अलम्)**=दोषों का सुदूर वारण करने के लिए यत्नशील युवति को **त्रिः पूत्वा**=तीन प्रकार से पवित्र करके—शरीर, इन्द्रियों व मन में पवित्र व निर्दोष बनाकर **सूर्यत्वचम् अकृणोः**=आप सूर्यसम दीप्त त्वचावाला बनाते हैं, इसे नितराम तेजस्वी बनाते हैं। २. शरीर, इन्द्रियों व मन के दोषों का निराकरण होने पर जीवन तेजस्वी व पवित्र बनता ही है। शरीर के दोष रोग हैं, इन्द्रियों के दोष विषयसंग हैं तथा मन का दोष राग-द्वेष परिपूर्णता है। प्रभु अपाला के इन सब दोषों को दूर करते हैं।

भावार्थ—प्रभुकृपा से हमारे राष्ट्र में युवतियाँ 'शरीर, इन्द्रियों व मन' के दोषों से रहित होकर सूर्यसम दीप्त त्वचावाली हों।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सौमनस्य, प्रजा, सौभाग्य, रयि

आशासाना सौमनसं प्रजां सौभाग्यं रयिम्।
पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम्॥ ४२॥

१. **सौमनसम्**=उत्तम स्वान्त (मन का), **प्रजां सौभाग्यं रयिम्**=सन्तान, सौभाग्य व सम्पत् को **आशासाना**=चाहती हुई, हे पुत्रवधु! तू **पत्युः अनुव्रता भूत्वा**=पति के अनुकूल व्रतोंवाली होकर **कम्**=सुखपूर्वक **अमृताय**=अमृतत्व के लिए, शतवर्षपर्यन्त जीवन के लिए **सं नह्यस्व**=संनद्ध हो जा।

भावार्थ—पत्नी 'सौमनस, सन्तति, सौभाग्य व सम्पत्' की कामना करती हुई पति के अनुकूल व्रतोंवाली होकर पूरे सौ वर्ष के दीर्घजीवन के लिए कामना करे।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सम्राज्ञी (पत्नी)

यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा। एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य॥ ४३॥

यथा=जिस प्रकार **वृषा**=वृष्टि का कारणभूत (समुद्र से जल वाष्पीभूत होकर आकाश में पहुँचते हैं और वहाँ बादलों के रूप में होकर बरसते हैं), **सिन्धु**=समुद्र **नदीनाम् साम्राज्यं सुषुवे**=नदियों के साम्राज्यों को अपने लिए उत्पन्न करता है, **एव**=इसीप्रकार **त्वम्**=हे पुत्रवधु! तू **पत्युः अस्तं परेत्य**=पति के घर में पहुँचकर **सम्राज्ञी ऐधि**=शासन करनेवाली बन। एक युवति पतिगृह में प्राप्त होकर घर की व्यवस्था को समुचित रखने का उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर ले।

भावार्थ—जिस प्रकार समुद्र नदियों का सम्राट् है, उसीप्रकार युवतियाँ गृहों का शासन

करनेवाली हों, सम्राज्ञी हों।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

घर की समुचित व्यवस्था

सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्युत देवृषु। ननान्दुः सम्राज्ञ्येधि सम्राज्युत श्वश्वाः॥ ४४॥

१. पत्नी को घर में जाकर घर का समुचित प्रबन्ध करना है। उससे कहते हैं कि यहाँ पतिगृह में तू परायापन अनुभव न करना। परायेपन की बात तो दूर रही तू **श्वशुरेषु**=पितृतुल्य बड़े लोगों में **सम्राज्ञी एधि**=सम्राज्ञी बन। उनके सब कार्यों की सम्यक् व्यवस्था करनेवाली हो। **उत**=और **देवृषु सम्राज्ञी**=सब देवरों में भी तू सम्राज्ञी हो। उनके सब कार्यों को समुचितरूप से कराती हुई तू उनके रञ्जन का कारण बन। २. **ननान्दुः सम्राज्ञी एधि**=ननद की भी तू सम्राज्ञी हो। तू ननद की सब आवश्यकताओं का ध्यान करती हुई उसकी प्रिय बन, **उत**=और **श्वश्वाः**=श्वश्रू की भी **सम्राज्ञी**=तू सम्राज्ञी हो। सास को भी अपने उचित व्यवहार से तू महारानी-सी प्रिय लगे।

भावार्थ—पत्नी को चाहिए कि घर में सब व्यवस्थाओं का समुचितरूप से पालन करती-कराती हुई वह बड़े व छोटे सबकी प्रिय बने।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

घर में काते-बुने गये वस्त्रों का धारण

या अकृन्तन्नवयन्याश्च तत्निरे या देवीरन्ताँ अभितोऽददन्त।
तास्त्वा जरसे सं व्ययन्त्वायुष्मतीदं परि धत्स्व वासः॥ ४५॥

१. हे **आयुष्मति**=दीर्घ जीवन को प्राप्त करानेवाली नववधु! **याः**=जिन साड़ियों को **देवीः अकृन्तन्**=घर की देवियों ने स्वयं काता है और **अवयन्**=बुना है **याः च तत्निरे**=और जिनको घर की देवियों ने ही ताना है तथा **याः**=जिनको इन्होंने **अभितः अन्तान् अददन्त**=दोनों ओर के आँचलों (सिरों) को सिया है, **ताः**=वे साड़ियाँ **त्वा**=तुझे **जरसे संव्ययन्तु**=दीर्घ जीवन के लिए आच्छादित करनेवाली हों। हे आयुष्मति! **इदं वासः परि धत्स्व**=इस वस्त्र को ही धारण कर।

भावार्थ—घर में काते-बुने गये वस्त्रों के धारण की परिपाटी ही उत्तम है। इन वस्त्रों के एक-एक सूत्र में प्रेम का अंश पिरोया हुआ होता है तथा व्यर्थ के फैशन से भी बचाव रहता है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**जगती**॥

कन्या को प्रसन्नतापूर्वक पतिगृह में भेजना

जीवं रुदन्ति वि नयन्त्यध्वरं दीर्घामनु प्रसितिं दीध्युर्नरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समीरिरे मयः पतिभ्यो जनये परिष्वजे॥ ४६॥

१. कन्या को माता-पिता पालते हैं, युवति होने पर उसे पतिगृह में भेजते हैं। उस समय वियोग में रोना कुछ अमंगल-सा हो जाता है, अतः कहते हैं कि **जीवं रुदन्ति**=जो इस जीवित व्यक्ति के लिए ही रोते हैं, वे **अध्वरं विनयन्ति**=इस पवित्र विवाह-यज्ञ को अमंगलयुक्त कर देते हैं। जो **नरः**=अनासक्तिपूर्वक कर्त्तव्य-कर्मों को करनेवाले (न रमते) लोग हैं वे **दीर्घाम् प्रसितिं अनुदीध्युः**=अपनी कन्या को लम्बे प्रकृष्ट बन्धन—पति-पत्नी सम्बन्ध को ध्यान करके दीप्त होते हैं। 'किस प्रकार उनकी कन्या पति के साथ मिलकर अपने गृहस्थ-यज्ञ को अनुकूलता

से चलाएगी' यह सोचकर वे प्रसन्न होते हैं। २. **ये**=जो भी **इदम्**=इस गृहयज्ञ को **सम् ईरिरे**=सम्यक् प्रेरित करते हैं वे **पितृभ्यः वामम्**=माता-पिता बड़ों के लिए सुन्दर कार्य को ही करते हैं। यह **जनये परिष्वजे**=पत्नी का आलिंगन **पतिभ्यः मयः**=पतियों के लिए भी कल्याणकर होता है।

भावार्थ—अपनी कन्या को पतिगृह में भेजने के अवसर पर माता-पिता प्रसन्नता का अनुभव करें। यही कामना करें कि उनकी कन्या पति के साथ दीर्घ बन्धन में बद्ध होकर रहे। यह गृहस्थ-यज्ञ तो माता-पिता के लिए अत्यन्त सुन्दर वस्तु है तथा पति के लिए यह पत्नी का सम्बन्ध कल्याणकर ही है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पाषाणतुल्य दृढ़ शरीर

स्योनं ध्रुवं प्रजायै धारयामि तेऽश्मानं देव्याः पृथिव्या उपस्थे।
तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु॥ ४७॥

१. हे नववधु! **देव्याः पृथिव्या उपस्थे**=इस दिव्यगुणोंवाली पृथिवी माता की गोद में **ते**=तेरे लिए **स्योनम्**=सुखकर **ध्रुवम्**=स्थिरता से रहनेवाले, रोगों से न हिल जानेवाले **अश्मानम्**=पाषाणतुल्य दृढ़ शरीर को **प्रजायै**=उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिए **धारयामि**=धारण करता हूँ। जितना पृथिवी के सम्पर्क में उठना-बैठना होगा उतना ही शरीर स्वस्थ रहेगा। शरीर को पाषाणतुल्य दृढ़ बनाना आवश्यक है। माता का शरीर पूर्ण स्वस्थ होगा तो सन्तान भी उत्तम होगी। २. हे नववधु! तू **अनुमाद्या**=पति की अनुकूलता में हर्ष को प्राप्त करती हुई **सुवर्चाः**=उत्तम वर्चस् बनकर **तं आतिष्ठ**=उस पाषाणतुल्य दृढ़ शरीर में स्थित हो। **सविता**=सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभु **ते**=तेरे लिए **आयुः दीर्घं कृणोतु**=दीर्घ जीवन करें।

भावार्थ—पत्नी गृह में पृथिवी की गोद में उठने-बैठनेवाली हो। इसप्रकार उसका शरीर स्वस्थ व दृढ़ होगा, गद्दों व पलंगों पर ही बैठने से नहीं। तब प्रजा भी उत्तम होगी, पति की अनुकूलता में तेजस्विनी होती हुई यह दृढ़ शरीर में निवास करें और प्रभुकृपा से दीर्घ जीवन को प्राप्त करे।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**पथ्यापङ्क्तिः**॥

प्रजया च धनेन च

येनाग्निरस्या भूम्या हस्तं जग्राह दक्षिणम्।
तेन गृह्णामि ते हस्तं मा व्यथिष्ठा मया सह प्रजया च धनेन च॥ ४८॥

१. राजा पृथिवीपति कहलाता है, मानो यह पृथिवी का दक्षिण हाथ ग्रहण करके उसे अपनी पत्नी बनाता है और उसका सम्यक् रक्षण करता है, उसीप्रकार एक युवक भी युवति के हाथ को ग्रहण करता हुआ कहता है कि **अग्निः**=राष्ट्र को आगे ले-चलनेवाला राजा **येन**=जिस हेतु से **अस्याः भूम्याः**=भूमि के—प्रजाओं के निवासस्थानभूत पृथिवी के **दक्षिणं हस्तं जग्राह**=दाहिने हाथ को ग्रहण करता है, **तेन**=उसी हेतु से मैं **ते हस्तं गृह्णामि**=तेरे हाथ का ग्रहण करता हूँ। तू **मा व्यथिष्ठाः**=पितृगृह से पृथक् होती हुई किसी भी प्रकार पीड़ित न हो, दुःखी न हो। तू **मया सह**=मेरे साथ **प्रजया च धनेन च**=प्रजा व धन के साथ सम्यक् निवासवाली होगी, उत्तम सन्तति को प्राप्त होगी और तुझे उनके पालन के लिए आवश्यक धन की कमी न रहेगी।

भावार्थ—गृहस्थ युवक का कर्त्तव्य है कि घर में उत्तम सन्तति के पालन-पोषण के लिए

आवश्यक धन की कमी न होने दे।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

देव, सविता, सोम, राजा

देवस्ते सविता हस्तं गृह्णातु सोमो राजा सुप्रजसं कृणोतु।
अग्निः सुभगां जातवेदाः पत्ये पत्नीं जरदष्टिं कृणोतु॥ ४९॥

१. हे वधु! **देवः**=दिव्यगुणों की प्रकृतिवाला **सविता**=सदा उत्तम प्रेरणाएँ देनेवाला यह युवक **ते**=तेरे **हस्तम्**=हाथ को **गृह्णातु**=ग्रहण करे। **सोमः**=सौम्य स्वभाववाला व सोमशक्ति का पुञ्ज **राजा**=व्यवस्थित (Regulated) जीवनवाला यह युवा पति तुझे **सुप्रजसं कृणोतु**=उत्तम सन्तानवाला करे। पति देववृत्तिवाला हो, घर में सबको उत्तम प्रेरणाएँ प्राप्त करानेवाला हो। सौम्य स्वभाव व शक्ति का पुञ्ज हो तथा व्यवस्थित जीवनवाला हो। २. **जातवेदाः अग्निः**=वह सर्वज्ञ अग्रणी प्रभु **सुभगां पत्नीम्**=तुझ सौभाग्यशालिनी पत्नी को **पत्ये**=पति के लिए **जरदष्टिं कृणोतु**=पूर्ण अवस्था को प्राप्त करनेवाला, अर्थात् दीर्घजीवनवाला करे। तू दीर्घजीवन को धारण करती हुई पति के लिए गृहस्थ-यज्ञ की पूर्ति में साथी बन।

भावार्थ—पति 'देववृत्ति का, सदा उत्तम प्रेरणा देनेवाला, सौम्य व व्यवस्थित जीवनवाला हो'। पत्नी सौभाग्यशालिनी व दीर्घजीवनवाली होती हुई पति के लिए इस गृहस्थ-यज्ञ में सहायता करनेवाली हो।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धि, देव

गृह्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥ ५०॥

१. पति पत्नी से कहता है—मैं **सौभगत्वाय ते हस्तं गृह्णामि**=घर को सुभग-सम्पन्न बनाने के लिए तेरे हाथ का ग्रहण करता हूँ, **यथा**=जिससे **मया पत्या**=मुझ पति के साथ इस घर को सौभाग्य-सम्पन्न बनाती हुई तू **जरदष्टिः असः**=जरावस्था का व्यापन करनेवाली, दीर्घजीवनवाली हो। २. **भगः अर्यमा सविता पुरन्धिः देवाः**=भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धि व देवों ने **त्वा**=तुझे **गार्हपत्याय**=गृहपतित्व के लिए—गृह के कार्य को सम्यक् चलाने के लिए **मह्यं अदुः**=मेरे लिए दिया है, अर्थात् तेरे माता-पिता ने यह देखकर कि (क) मैं धन को उचितरूप में कमानेवाला हूँ, (ख) काम-क्रोधादि शत्रुओं का नियमन करनेवाला हूँ (अरीन् यच्छति), (ग) निर्माणात्मक कार्यों में अभिरुचिवाला हूँ (सविता), (घ) पालक बुद्धि से युक्त हूँ (पुरन्धि), (ङ) उत्तम गुणों को अपनाये हुए हूँ (देवाः)। यह सब देखकर ही उन्होंने तेरे हाथ को मेरे हाथ में दिया है।

भावार्थ—पति को उचित मार्ग से धन कमानेवाला, काम-क्रोधादि का नियमन करनेवाला, निर्माणात्मक प्रवृत्तिवाला, पालक बुद्धियुक्त व देववृत्तिवाला होना चाहिए।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

नव गृहपतिः

भगस्ते हस्तमग्रहीत्सविता हस्तमग्रहीत्। पत्नी त्वमसि धर्मणाहं गृहपतिस्तव॥ ५१॥

१. पति पत्नी से कहता है कि **भगः**=उचित मार्ग से ऐश्वर्य को कमानेवाले ने ही **ते हस्तं**

अग्रहीत्=तेरे हाथ का ग्रहण किया है। **सविता**=निर्माणात्मक कर्मों में अभिरुचिवाले ने ही **हस्तं अग्रहीत्**=तेरे हाथ को ग्रहण किया है। २. **पत्नी त्वं असि धर्मणा**=यज्ञादि उत्तम कर्मों के हेतु से ही तू मेरी पत्नी हुई है। तेरे साथ मिलकर यज्ञादि उत्तम कर्मों को कर पाऊँगा। **अहं त्व गृहपतिः**=मैं तेरे घर का रक्षक होऊँगा। घर तो तेरा ही होगा, तूने ही इसका निर्माण करना होगा। मैं तो रक्षकमात्र ही होऊँगा।

भावार्थ—ऐश्वर्य की कामनावाला तथा निर्माण के कार्यों में रुचिवाला युवक ही एक युवति का हाथ ग्रहण करता है, जिससे उसके साथ वह धर्म के कार्यों को कर सके। पत्नी ने ही घर को बनाना है, पति तो उस निर्मित घर का रक्षक होगा।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ममेयमस्तु पोष्या

ममेयमस्तु पोष्या मह्यं त्वादाद् बृहस्पतिः।
मया पत्या प्रजावति सं जीव शरदः शतम्॥ ५२॥

१. **इयम्**=यह पत्नी **मम पोष्या अस्तु**=मेरी पोषणीय हो। मैं घर में पोषण के लिए आवश्यक वस्तुओं की कमी न होने दूँ। **मह्यम्**=मेरे लिए **त्वा**=तुझे **बृहस्पतिः अदात्**=ब्रह्मणस्पति प्रभु ने प्राप्त कराया है, दिया है। प्रभु की कृपा से ही यह हमारा सम्बन्ध हुआ है। हे **प्रजावति**=उत्तम सन्तानों को जन्मदेनेवाली सुभगे! तू **मया पत्या**=मुझ पति के साथ **शरदः शतम्**=शतवर्षपर्यन्त **संजीव**=सम्यक् जीनेवाली हो। हम दोनों मिलकर इस गृहस्थयज्ञ को सम्यक् सम्पन्न करें।

भावार्थ—गृहपति यह अपना सर्वाधिक आवश्यक कर्त्तव्य समझे कि घर में पोषण के लिए आवश्यक सामग्री में कमी न हो। पत्नी भी इस सम्बन्ध को प्रभु प्रेरणा से हुआ-हुआ समझती हुई पति के साथ प्रेम से गृहस्थयज्ञ में उत्तम सन्तानोंवाली बने।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

बृहस्पते कवीनाम् प्रशिषा

त्वष्टा वासो व्य दधाच्छुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव परि धत्तां प्रजया॥ ५३॥

१. **त्वष्टा**=देवशिल्पी, उत्तम गृहनिर्माता ने **बृहस्पतेः**=उस ज्ञानी प्रभु की वेदोपदीष्ट **प्रशिषा**=आज्ञा के अनुसार तथा **कवीनाम्**=ज्ञानियों के **प्रशिषा**=प्रशासन के अनुसार (Architect के निर्देशानुसार) **शुभे**=शोभा की वृद्धि के लिए **कं वासः**=सुखप्रद वासगृह को **व्यदधात्**=बनाया है। २. **तेन**=उस वासगृह के द्वारा, उस घर में सम्यक् निवास के द्वारा **सूर्याम् इव इमां नारीम्**=सूर्या के समान दीप्त इस नारी को **सवितः भगः च**=निर्माणात्मक कार्यों में रुचिवाला यह ऐश्वर्य का विजेता पति **प्रजया परिधत्ताम्**=उत्तम प्रजा के हेतु से धारण करे। घर में सब व्यवस्था ठीक होने से मनःप्रसाद के कारण उत्तम सन्तानों का होना स्वाभाविक है।

भावार्थ—प्रभु द्वारा वेदोपदीष्ट प्रकार से तथा वास्तुकला-निपुण गृहालेखकर्त्ता (Architect) के निर्देशानुसार उत्तम शिल्पी द्वारा घर बनवाया जाए। उसमें प्रेरक व धन के अर्जक (earn) पति के साथ प्रसन्नतापूर्वक रहती हुई यह पत्नी उत्तम प्रजावाली हो।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

एक नारी के चौदह रत्न

इन्द्राग्नी द्यावापृथिवी मातरिश्वा मित्रावरुणा भगो अश्विनोभा।
बृहस्पतिर्मरुतो ब्रह्म सोम इमां नारीं प्रजया वर्धयन्तु॥ ५४॥

१. **इन्द्राग्नी**=इन्द्र और अग्नि, अर्थात् जितेन्द्रियता व आगे बढ़ने की भावना, **द्यावापृथिवी**=स्वस्थ मस्तिष्क व स्वस्थ शरीर (मूर्ध्नो द्यौः, पृथिवी शरीरम्) **मातरिश्वा**=वायु, अर्थात् शुद्ध वायु का सेवन, **मित्रावरुणा**=स्नेह व निर्द्वेषता (द्वेष-निवारण) की भावना, **भगः**=उत्तम ऐश्वर्य—दरिद्रता का अभाव, **उभा अश्विना**=दोनों प्राण व अपान, **बृहस्पतिः**=(बृहतां पतिः) विशाल हृदयता, संकुचित मनोवृत्ति का न होना, **मरुतः**=मितराविता—बहुत बोलने की प्रवृत्ति का न होना, **ब्रह्म**=ज्ञान **सोमः**=शरीर में सोमशक्ति का **रक्षण**—ये सब **इमां नारीम्**=इस नारी को **प्रजया वर्धयन्तु**=उत्तम सन्तति से बढ़ाएँ। इन्द्र व अग्नि आदि शब्दों से सूचित भाव इस नारी को उत्तम सन्तति प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—सन्तति की उत्तमता के लिए गृहिणी को 'जितेन्द्रियता, प्रगतिशीलता, स्वस्थ मस्तिष्क, स्वस्थ शरीर, शुद्ध वायुसेवन, स्नेह, निर्द्वेषता, उत्तम ऐश्वर्य, प्राणशक्ति, अपानशक्ति, विशाल हृदयता, मितराविता, ज्ञान व सोमशक्ति का शरीर में रक्षण'—इन चौदह रत्नों को अपने जीवन में धारण करना चाहिए।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती**॥

केश-प्रसाधन-जनित 'सौन्दर्य'

बृहस्पतिः प्रथमः सूर्यायाः शीर्षे केशाँ अकल्पयत्।
तेनेमामश्विना नारीं पत्ये सं शोभयामसि॥ ५५॥

१. **बृहस्पतिः**=ब्रह्मणस्पति, ज्ञान के स्वामी **प्रथमः**=(प्रथ विस्तारे) शक्तियों के विस्तारवाले प्रभु ने **सूर्यायाः शीर्षे**=सूर्य के समान ज्ञानदीप्त अथवा सूर्य के समान सरणशीला (क्रियाशीला) इस नारी के शीर्षे=सिर पर **केशान् अकल्पयत्**=बालों की रचना की है। हे **अश्विना**=स्त्री व पुरुषो! **इमां नारीम्**=इस नारी को **तेन**=उस केशसमूह से **पत्ये**=पति के लिए **संशोभयामसि**=सम्यक् शोभित करते हैं। बाल स्त्री के सिर की शोभा की वृद्धि के कारण बनते हैं। केशों की ठीक स्थिति स्त्री की शोभा व सौन्दर्य को बढ़ानेवाली होती है।

भावार्थ—स्त्री केशों की सुस्थिति द्वारा अपनी शोभा को बढ़ानेवाली होती है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गुण-कर्म-स्वभाव को समझकर साथी का चुनाव

इदं तद्रूपं यदवस्त योषा जायां जिज्ञासे मनसा चरन्तीम्।
तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः क इमान्विद्वान्वि चचर्त पाशान्॥ ५६॥

१. **योषा**=यह स्त्री **यत् अवस्त**=जो उत्तम वस्त्रों को धारण करती है, **इदं तत् रूपम्**=यह उसका उत्तम रूप है। उत्तम वस्त्रों को धारण करके यह रूपवती हुई है। **मनसा चरन्तीम्**=ज्ञानपूर्वक विचरण करती हुई **जायाम्**=जाया को, पत्नी को मैं **जिज्ञासे**=और अधिक जानना चाहता हूँ। गुण-कर्म-स्वाभावों को समझकर ही जीवनसाथी का चुनना ठीक होता है। केवल वस्त्रजनित सौन्दर्य पर ही मुग्ध होकर साथी का चुनाव नहीं हुआ करता। २. इसप्रकार ठीक चुनाव होने

पर **ताम् अनु**=उसको साथी के रूप में प्राप्त करने के लक्ष्य से **नवग्वैः सखिभिः**=प्रशस्त गतिवाले मित्रों के साथ **अन्वर्तिष्ये**=गतिवाला होऊँगा। इन मित्रों के साथ उस युवति के गृह पर उपस्थित होकर उसे सहधर्मिणि के रूप में स्वीकार करूँगा। **कः विद्वान्**=कोई विरल ज्ञानी पुरुष ही **इमान् पाशान्**=इन प्रेम-बन्धन के पाशों को **विचचर्त**=काटा करता है। सामान्यतः इन प्रेम-बन्धनों से बद्ध होकर सद्गृहस्थ बनना ही मानवोचित मार्ग है।

भावार्थ—वस्त्रों से एक युवति का शरीर शोभावाला होता ही है, परन्तु साथी का चुनाव केवल इस वस्त्रजनित सौन्दर्य के ही कारण न हो। उसके स्वभाव के सौन्दर्य को समझकर ही साथी का चुनाव उचित है। चुनाव ठीक हो जाने पर उसकी प्राप्ति के लिए प्रशस्ताचरण मित्रों के साथ उसके घर पर जाना चाहिए। प्रेम-बन्धनों को एकदम काट डालना बहुत प्रकृष्ट ज्ञानी पुरुष के लिए ही सम्भव है। सामान्यतः सद्गृहस्थ बनना ही सत्पथ पर चलना है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पश्यन् वेदत्

अहं वि ष्यामि मयि रूपमस्या वेददित्पश्यन्मनसः कुलायम्।
न स्तेयमद्मि मनसोदमुच्ये स्वयं श्रथ्नानो वरुणस्य पाशान्॥ ५७॥

१. **अस्याः रूपम्**=इस युवति के रूप को अपने **मनसः कुलायम् पश्यन्**=मन का घोंसला, मन का आश्रय-स्थान देखता हुआ **वेदत् इत्**=निश्चय से समझता हुआ ही **अहम्**=मैं इसके रूप को **मयि विष्यामि**=अपने हृदय में (विष्यति to complete) पूर्ण करता हूँ, पूर्णरूप से धारण करता हूँ। इसका रूप मेरे मन के लिए आकर्षक हुआ है। उस आकर्षण के परिणामों को भी समझता हुआ मैं इसके रूप को अपने रूप में स्थान देता हूँ। 'मैं केवल हृदय से इसे चाहता हूँ', ऐसी बात नहीं। मस्तिष्क से विचार करके मैं इस सम्बन्ध को स्वीकार कर रहा हूँ। २. आज से **न स्तेयं अद्मि**=कोई भी वस्तु मैं चुपके-चुपके अकेले न खाने का व्रत लेता हूँ। **मनसा उद्मुच्ये**=अलग खाने के विचार को मैं मन से ही छोड़ देता हूँ। इसप्रकार **वरुणस्य पाशान्**=व्रतों के बन्धन के तोड़नेवालों को बाँधनेवाले वरुण के पाशों को स्वयं **श्रथ्नानः**=स्वयं ढीला करनेवाला होता हूँ। मैं अपने को व्रतों के बन्धनों में बाँधकर चलता हूँ और परिणामतः वरुण के पाशों से बद्ध नहीं होता।

भावार्थ—एक युवक युवति के रूप को तो देखता ही है, परन्तु केवल भावुकतावश आकृष्ट न होकर मस्तिष्क से सोचकर सम्बन्ध को स्थापित करता है। इसी कारण यह वरुण के पाशों से जकड़ा नहीं जाता। यह आज से 'अकेले न खाने का' व्रत लेता है। मिलकर खाना परस्पर प्रेम का वर्धक होता है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

उरुं लोकं, सुगं पन्थाम्

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवाः।
उरुं लोकं सुगमत्र पन्थां कृणोमि तुभ्यं सहपत्न्यै वधु॥ ५८॥

१. **त्वा**=तुझे **वरुणस्य पाशात्**=श्रेष्ठ प्रभु के उस पाश से **प्रमुञ्चामि**=छुड़ाता हूँ, **येन**=जिस पाश से **त्वा**=तुझे **सुशेवाः**=उत्तम कल्याण करनेवाले **सविता**=इस आनन्ददाता पिता ने **अबध्नात्**=बाँधा हुआ था। पुत्री के प्रति पिता का प्रेम ऐसा होता है कि उसको तोड़ लेना सरल नहीं। प्रभु ने इस प्रेम-बन्धन को पैदा किया है। यौवनावस्था तक पिता इस प्रेम के कारण ही

उसे पालित व पोषित करता है। २. अब यह उसका भावी पति उसे इस बन्धन से छुड़ाकर कहता है कि हे **वधु**=गृहस्थ के बोझ का वहन करनेवाली पत्नि! **अत्र**=यहाँ गृहस्थाश्रम में **सहपत्न्यै**=पति के साथ मिलकर गृहस्थभार का वहन करनेवाली **तुभ्यम्**=तेरे लिए **उरुं लोकम्**=विशाल लोक को, प्रकाश को तथा **सुगं पन्थां कृणोमि**=सुगमता से चलने योग्य मार्ग बनाता हूँ। मैं प्रयत्न करता हूँ कि तुझे समस्याओं का अन्धकार यहाँ न घेर ले और तुझे मार्ग पर बढ़ने पर कठिनता न हो।

भावार्थ—'पति' पत्नी को उसके पितृगृह से पृथक् करता हुआ प्रभु से उत्पादित पितृप्रेम के बन्धन से छुड़ाता है और प्रयत्न करता है कि पतिगृह में उसके सामने समस्याओं का अन्धकार न हो और उसे जीवन-मार्ग में आगे बढ़ने में कठिनता न हो।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गृह का पवित्र वातावरण

उद्यच्छध्वमप रक्षो हनाथेमां नारीं सुकृते दधात।
धाता विपश्चित्पतिमस्यै विवेद भगो राजा पुर एतु प्रजानन्॥ ५९॥

१. घर में सभी को यह कर्त्तव्यरूप से कहा जाता है कि **उद्यच्छध्वम्**=उद्यमवाले होओ, आलस्य को दूर फेंककर कर्त्तव्य-कर्मों में तत्पर होओ। **रक्षः अपहनाथ**=राक्षसीभावों को दूर नष्ट करो। आलस्य में ही राक्षसीभाव जागरित होते हैं। उद्योग से युक्त उत्तम वातावरण में **इमां नारीम्**=इस नारी को भी **सुकृते दधात**=पुण्यकर्म में धारण करो। यह भी इस गृह के उत्तम वातावरण में यज्ञादि पुण्यकर्मों को करनेवाली हो। २. उस **विपश्चित् धाता**=ज्ञानी, धारक प्रभु ने ही **अस्यै पतिं विवेद**=इसके लिए पति को प्राप्त कराया है। वह **भगः**=ऐश्वर्यशाली **राजा**=सबका शासक **प्रजानन्**=सर्वज्ञ प्रभु **पुरः एतु**=इसके आगे प्राप्त हो, इसके लिए मार्गदर्शक हो। यह युवति यही अनुभव करे कि प्रभु ने मुझे इस पति के साथ सम्बन्ध प्राप्त कराया है। प्रभु मेरे लिए मार्गदर्शक होंगे। इस मार्ग पर आक्रमण करती हुई मैं भी ऐश्वर्य-सम्पन्न व दीप्त जीवनवाली बन पाऊँगी (भगः राजा)।

भावार्थ—घर का वातावरण पुरुषार्थवाला होगा तो वहाँ अशुभ वृत्तियाँ होंगी ही नहीं। पवित्र वातावरण में यह युवति भी यज्ञादि पवित्र कर्मों को करनेवाली होगी। वह यही भाव धारण करेगी कि प्रभु ने मेरे लिए यह सम्बन्ध प्राप्त कराया है और प्रभु ही मेरे लिए मार्गदर्शक होंगे। उस मार्ग पर चलती हुई मैं ऐश्वर्य (भग) व दीप्ति (राजा) से सम्पन्न बन पाऊँगी।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

चतुरः पादान् चत्वारि आयुष्पलानि

भगस्ततक्ष चतुरः पादान्भगस्ततक्ष चत्वार्युष्पलानि।
त्वष्टा पिपेश मध्यतोऽनु वर्ध्रान्त्सा नो अस्तु सुमङ्गली॥ ६०॥

१. **भगः**=उस भजनीय प्रभु ने हमारे लिए **चतुरः पादान्**=चार 'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' रूप गन्तव्य पुरुषार्थों को **ततक्ष**=बनाया है। हमने केवल 'अर्थ-काम' में आसक्त नहीं होना। धर्म व मोक्ष से सुरक्षित अर्थ-काम ही पुरुषार्थ हैं। उनके न रहने पर तो ये व्यर्थ ही हो जाते हैं। धर्मपूर्वक अर्थ व काम होंगे तो ये मोक्ष के साधक बनेंगे। **भगः**=इस भजनीय प्रभु ने **चत्वारि**=चार—स्वाध्याय, यज्ञ, तप व दानरूप कर्मों को **उष्पलानि**=(उष दाहे, पल रक्षणे) कामाग्नि में दग्ध हो जाने से रक्षण करनेवाला **ततक्ष**=बनाया है। स्वाध्याय, यज्ञ, तप

व दानरूप धर्मों में प्रवृत्त होने पर हम कामाग्नि से दग्ध होने से बचे रहेंगे। २. **त्वष्टा**=वह ज्ञानदीप्त निर्माता (त्विष् तक्ष्) प्रभु **मध्यता**=इस गृहस्थरूप जीवन के माध्यन्दिन सवन में **अनु वर्ध्रान्**=अनुकूल संयम रज्जुओं को **पिपेश**=हमारे लिए निर्मित करता है। यहाँ संयमी जीवनवाले पुरुषों से युक्त गृहस्थ में **सा**=वह नववधू **नः**=हमारे लिए **सुमंगली अस्तु**=उत्तम मंगलों को सिद्ध करनेवाली हो। वासनामय जीवन होने पर पत्नी घर को मंगलमय नहीं बना सकती।

भावार्थ—'प्रभु ने धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष' इन चार पुरुषार्थों को हमारे लिए गन्तव्य मार्ग के रूप में नियत किया है। गृहस्थ में कामाग्नि में दग्ध हो जाने से रक्षण के लिए 'स्वाध्याय, यज्ञ, तप व दान' इन सुकृतों का स्थापन किया है। गृहस्थ में भी व्रतरूप संयम-रज्जुओं से हमें बाँधा है। ऐसे घर में पत्नी सुमंगली होती है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गृहस्थ-रथ

सुकिंशुकं वहतुं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पतिभ्यो वहतुं कृणु त्वम्॥ ६१॥

१. हे **सूर्ये**=सविता की पुत्री! सूर्यसम दीप्त जीवनवाली सरणशीले! तू **आरोह**=इस गृहस्थ-रथ पर आरूढ़ हो, जो रथ **सुकिंशुकम्**=उत्तम प्रकाशवाला है, जिसे तूने स्वाध्याय के द्वारा उत्तम प्रकाश से युक्त करना है। **वहतुम्**=जो हमें उद्दिष्ट स्थल की ओर ले-जानेवाला है। **विश्वरूपम्**=जो सर्वत्र प्रविष्ट प्रभु का निरूपण करनेवाला है, चमकता है। यहाँ सबका स्वास्थ्य उत्तम होने से सब चमकते हैं। **सुवृतम्**=यह रथ उत्तम वर्तनवाला है। यहाँ सबकी वृत्ति उत्तम है तथा **सुचक्रम्**=यह रथ उत्तम चक्रवाला है, अर्थात् सब उत्तम कर्मों में प्रवृत्त हैं। २. हे सूर्ये! **त्वम्**=तू इस **वहतुम्**=रथ को **पतिभ्यः**=सब पतिकुलवालों के लिए **अमृतस्य लोकम्**=नीरोगता का स्थान तथा **स्योनं कृणु**=सुखप्रद कर। तेरे उत्तम व्यवहार व प्रबन्ध से यहाँ सब नीरोग और सुखी रहें।

भावार्थ—गृहपत्नी ने घर में ऐसी व्यवस्था करनी है कि वहाँ सभी स्वाध्यायशील हों, प्रभु-स्तवन की वृत्तिवाले हों, स्वास्थ्य की ज्योति से चमकते हों, उत्तम वृत्तिवाले व उत्तम कर्मोंवाले हों, घर में नीरोगता व सुख हो।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अभ्रातृघ्नी, अपशुघ्नी, अपतिघ्नी, पुत्रिणी

अभ्रातृघ्नीं वरुणापशुघ्नीं बृहस्पते। इन्द्रापतिघ्नीं पुत्रिणीमस्मभ्यं सवितर्वह॥ ६२॥

१. हे **वरुण**=द्वेष का निवारण करनेवाले प्रभो! आप **अस्मभ्यम्**=हमारे लिए **अभ्रातृघ्नीम् आवह**=उस पत्नी को प्राप्त कराइए जो द्वेषादि के द्वारा हमारे भाइयों को नष्ट करनेवाली न हो, अपितु जिसके कारण भाइयों का प्रेम परस्पर बढ़े। हे **बृहस्पते**=ज्ञान के स्वामिन् प्रभो! आप हमारे लिए ऐसी पत्नी प्राप्त कराइए जो **अपशुघ्नीम्**=घर के गौ आदि पशुओं को नष्ट करनेवाली न हो। उसे गोरक्षण आदि का ज्ञान हो। २. हे **इन्द्र**=शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले प्रभो! आप उस पत्नी का इस घर में प्रवेश कराइए, जो **अपतिघ्नीम्**=पति को नष्ट करनेवाली न हो। पत्नी जितेन्द्रिय हो। वह वासनामय जीवनवाली होगी तो पति को भोगप्रवण बनाकर क्षीणशक्ति कर डालेगी। हे **सवितः**=सर्वोत्पादक प्रभो! हमें उस पत्नी को प्राप्त कराइए जो **पुत्रिणीम्**=प्रशस्त पुत्रों को जन्म देनेवाली हो। वह गृहस्थ को एक पवित्र सन्तान-निर्माण का आश्रम समझे। इसे

भोगस्थली न जाने।

भावार्थ—एक उत्तम पत्नी वरुण से निर्द्वेषता का पाठ पढ़कर भाइयों के प्रेम को बढ़ानेवाली होती है। बृहस्पतिरूप में प्रभु-स्मरण से स्वयं भी विदूषी बनने का प्रयत्न करती है। इस ज्ञान के द्वारा गवादि पशुओं का भी समुचित रक्षण करती है। जितेन्द्रिय होती हुई पति के विनाश का कारण नहीं होती और सविता के स्मरण से गृहस्थ को पवित्र सन्तान-निर्माण का आश्रम समझती है।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शाला का द्वार वधू के लिए स्योन हो

मा हिंसिष्टं कुमार्यं१ स्थूणे देवकृते पथि।
शालाया देव्या द्वारं स्योनं कृण्मो वधूपथम्॥ ६३॥

१. घर में पुरुष व स्त्री घर के दो स्तम्भों के समान होते हैं, जो घर का धारण करते हैं। हे **स्थूणे**=घर के स्तम्भरूप स्त्री-पुरुषो! आप **देवकृते पथि**=उस महान् देव प्रभु से निश्चित किये गये मार्ग पर चलते हुए, अर्थात् अपने-अपने कर्त्तव्य-कर्मों को करते हुए **कुमार्यम्**=इस तुम्हारे घर में प्राप्त कुमारी युवति को **मा हिंसिष्ट**=हिंसित मत करो। घर में बड़े स्त्री-पुरुषों का यह कर्त्तव्य होता है कि आई हुई नववधू को किसी प्रकार से पीड़ित न होने दे। वह यहाँ परायापन ही न अनुभव करती रहे। २. घर के सब स्त्री-पुरुष व्रत लें कि हम इस **दैव्याः शालायाः**=दिव्यगुणों से व प्रकाश से युक्त शाला के **द्वारम्**=द्वार को **स्योनम् वधूपथम्**=सुखकर व वधू का मार्ग **कृण्मः**=बनाते हैं, अर्थात् 'यह वधू इस शाला के द्वार में प्रवेश करती हुई सुख ही अनुभव कर', ऐसी व्यवस्था करते हैं।

भावार्थ—घर के सब स्त्री-पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपने व्यवहार से नववधू के लिए किसी प्रकार के परायेपन व असुविधा को अनुभव न होने दें।

ऋषिः—**सावित्री**॥ देवता—**विवाहमन्त्राशिषः**॥ छन्दः—**जगती**॥

अनाव्याधा देवपुरा

ब्रह्मापारं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः।
अनाव्याधां देवपुरां प्रपद्य शिवा स्योना पतिलोके वि राज॥ ६४॥

१. नववधू जिस घर में प्रवेश करे वहाँ **अपारम्**=पीछे की ओर **ब्रह्म युज्यताम्**=ब्रह्म का सम्पर्क हो, **पूर्वम्**=सामने की ओर **ब्रह्म**=प्रभु का सम्पर्क हो, **अन्ततः मध्यता**=दोनों सिरों व मध्य में भी **ब्रह्म**=प्रभु का सम्पर्क हो। **सर्वतः ब्रह्म**=सब ओर ब्रह्म का सम्पर्क हो। इस घर में सभी प्रभु का स्मरण करनेवाले हों। २. हे नववधु! तू **अनाव्याधाम्**=व्याधियों से शून्य **देवपुराम्**=देववृत्ति के लोगों की नगरीरूप इस गृह को **प्रपद्य**=प्राप्त होकर यहाँ **पतिलोके**=पतिलोक में **शिवः**=कल्याणकर कर्मों को करनेवाली व **स्योना**=सुखी जीवनवाली **विराज**=विशिष्टरूप से दीप्त हो।

भावार्थ—नववधू को वह घर प्राप्त हो जहाँ सब प्रभु का स्मरण करनेवाले लोग हों, जिस घर में रोग नहीं, जिस घर में लोग देववृत्ति के हैं। यहाँ यह कर्त्तव्यपरायण सुखी जीवनवाली होवे।

अथ द्वितीयोऽनुवाकः

२. [द्वितीयं सूक्तम्]

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अग्नि के प्रति कन्या का अर्पण

तुभ्यमग्रे पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह।
स नः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह॥ १॥

१. हे **अग्ने**=परमात्मन्! **सूर्याम्**=इस सूर्या को—सूर्यसम दीप्त कन्या को इसके माता-पिता **वहतुना सह**=सम्पूर्ण दहेज के साथ **अग्रे**=पहले **तुभ्यम्**=तेरे लिए **पर्यवहन्**=प्राप्त कराते हैं। माता-पिता को अपनी कन्या को दूसरे घर में भेजते हुए आशंका का होना स्वाभाविक ही है। वे प्रभु से कहते हैं कि हम तो इसे आपको ही सौंप रहे हैं। आपने ऐसी कृपा करनी कि वह ठीक स्थान पर ही जाए। २. हे अग्ने! हमने तो इस कन्या को आपके लिए सौंप दिया है। **सः**=वे आप **नः**=हमारी इस कन्या को **पतिभ्यः**=पतियों के लिए **जायां दाः**=पत्नी के रूप में प्राप्त कराइए। आप इस कन्या को **प्रजया सह**=उत्तम प्रजा के साथ कीजिए। 'अग्नि' शब्द (आचार्य) के लिए भी आता है। कन्या को आचार्य के प्रति सौंपकर माता-पिता आचार्य द्वारा ही उसका सम्बन्ध कराएँ।

भावार्थ—कन्याओं के विवाह-सम्बन्ध आचार्यों के माध्यम से होने पर सम्बन्ध के अनौचित्य की शंका नितान्त कम हो जाती है। यह सम्बन्ध प्रभु-पूजनपूर्वक होना ही ठीक है।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

परस्पर सामनस्य से दीर्घजीवन

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा। दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम्॥ २॥

१. **अग्निः**=आचार्य, जिसके प्रति कन्या के माता-पिता ने कन्या के सम्बन्ध का कार्यभार सौंपा था, **पुनः**=फिर **पत्नीं अदात्**=पत्नी को पति के लिए देता है। वह उस पत्नी को **आयुषा वर्चसा सह**=आयुष्य और वर्चस् के साथ पति के लिए प्राप्त कराता है। इस सम्बन्ध से पत्नी आयुष्य और वर्चस्वाली बनती है। २. **अस्याः यः पतिः**=इस पत्नी का जो पति है वह भी **दीर्घायुः**=दीर्घजीवनवाला होता है और **शतं शरदः जीवाति**=सौ वर्ष तक जीनेवाला होता है। आचार्य पति-पत्नी का ठीक सम्बन्ध कराके दोनों के दीर्घजीवन को सिद्ध करता है।

भावार्थ—पति-पत्नी का सुन्दर सामञ्जस्य होने पर ही दोनों का दीर्घजीवन निर्भर है।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सोमः, गन्धर्वः, अग्निः, मनुष्यजाः

सोमस्य जाया प्रथमं गन्धर्वस्तेऽपरः पतिः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः॥ ३॥

१. **प्रथमम्**=सबसे पहले यह युवति **सोमस्य जाया**=सोम की पत्नी होती है। कन्या के माता-पिता सबसे प्रथम यह विचार करते हैं कि पति सौम्यस्वभाव का हो, कटु स्वभाव का न हो। **ते**=तेरा **अपरः पतिः**=दूसरा पति **गन्धर्वः**=वेदवाणी का धारण करनेवाला है। 'सौम्यता' यदि पति का प्रथम गुण है तो 'ज्ञान की वाणियों का धारण' उसका दूसरा गुण है। पति का ज्ञानी व ज्ञानरुचिवाला होना आवश्यक है। २. **तृतीयः**=तीसरे स्थान पर **अग्निः**=प्रगतिशील

मनोवृत्तिवाला **ते पतिः**=तेरा पति है। पति में तीसरा गुण यह होना चाहिए कि वह प्रगतिशील हो, जिसमें कोई महत्त्वाकांक्षा नहीं, उसने क्या उन्नति करनी? **तुरीय**=चौथा **ते पतिः**=तेरा पति वह है जोकि **मनुष्यजाः**=मनुष्य की सन्तान है, अर्थात् जिसमें मानवता है, जो दयालु है, न कि क्रूर।

भावार्थ—पति में क्रमशः 'सौम्यता, ज्ञानरुचिता, प्रगतिशीलता व मानवता' का होना आवश्यक है।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'सोम+गन्धर्व+अग्नि+मानव' को धन व पुत्रों की प्राप्ति

सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये। रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्॥ ४॥

१. **सोमः**=सोम (सौम्यस्वभाव का व्यक्ति) जिसके लिए कन्या के माता-पिता ने अपनी कन्या देने का निश्चय किया हुआ था, **गन्धर्वाय ददत्**=गन्धर्व के लिए इस कन्या को देनेवाला होता है, अर्थात् सौम्यता के साथ ज्ञानयुक्त पति प्राप्त हो जाता है तो फिर सोम के साथ सम्बन्ध न करके उस गन्धर्व के साथ ही सम्बन्ध किया जाता है। **गन्धर्वः**=ये गन्धर्व (ज्ञानी) भी **अग्नये ददत्**=इस कन्या को अग्नि—प्रगतिशील के लिए देता है, अर्थात् यदि सौम्यता व ज्ञान के साथ प्रगतिशीलता का गुण भी मिल जाए तो वह पति उत्तम होता है। 'सोम' उत् है, 'सोम+गन्धर्व' उत्तर है और 'सोम+गन्धर्व+अग्नि' उत्तम है। यह **अग्निः**=प्रगतिशील व्यक्ति भी **अथो**=अब, निश्चय से **इमाम्**=इस युवति को **मह्यम्**=मुझ मानव के लिए **अदात्**=देता है और वह अग्नि मेरे लिए **रयिं च पुत्रान् च**=धन और उत्तम सन्तति को प्राप्त करानेवाला होता है।

भावार्थ—'सौम्य' पति ठीक है, सौम्य से अधिक उत्कृष्ट (ज्ञानी) है, उससे भी उत्कृष्ट प्रगतिशील स्वभाववाला। इस प्रगतिशील में मानवता और अधिक शोभा को बढ़ा देती है। सोने पर सुहागे का काम करनेवाली होती है।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**जगती**॥

'न कामातुर न कृपण' गृहपति

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्य ऽश्विना हृत्सु कामा अरंसत।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुयाँ अशीमहि॥ ५॥

१. पति-पत्नी अश्विनीदेवों से प्रार्थना करते हैं कि **वाजिनीवसू**=अन्नरूप धनवाले **अश्विना**=प्राणापानो! **वाम्**=आप दोनों की **सुमतिः**=कल्याणीमति **आ अगन्**=हमें सर्वथा प्राप्त हो। प्राणापान को 'अन्न-धनवाले' इसीलिए कहा है कि इन्हीं से अन्न का पाचन होता है। वैश्वनर अग्नि (जाठराग्नि) प्राणापान से युक्त होकर सब अन्नों का पाचन करती है। अन्न का ठीक पाचन होकर इस सात्त्विक अन्न से सात्त्विक ही बुद्धि प्राप्त होती है। हे प्राणापानो! आपकी कृपा से **कामाः**=वासनाएँ **हृत्सु**=हृदयों में **नि अरंसत**=पूर्णरूप से नियमित हों। कामवासना का नियमन ही गृहस्थ का सर्वमहान् कर्त्तव्य है। इसके नियमन से सन्तान भी उत्तम होते हैं और पति-पत्नी की शक्ति भी स्थिर रहती है, इसप्रकार इससे नीरोगता व दीर्घजीवन सिद्ध होते हैं। २. हे प्राणापानो! आप **गोपा अभूतम्**=हमारी इन्द्रियों का रक्षण करनेवाले होओ। आप **मिथुना**=द्वन्द्वरूप में मिलकर कार्य करनेवाले होते हुए **शुभस्पती**=सब शुभों के पति होते हो। 'शुभ' का अर्थ (Water) शरीरस्थ रेतःकण भी है। प्राणसाधना के द्वारा शरीर में इनकी ऊर्ध्वगति होकर शरीर में ही रक्षण होता है। ३. पत्नी प्रार्थना करती है कि **प्रियाः**=पतियों की प्रिय होती हुई हम

अथवा प्रियरूपवाली होती हुई हम **अर्यम्णाः**=कामादि को वश में करनेवाले, नियन्त्रित वासनावाले (अरीन् यच्छति) तथा उदार (अर्यमेति तमाहुर्यो ददातीति) पति के **दुर्यान्**=घरों को **अशीमहि**=प्राप्त करें। हमें ऐसा पति प्राप्त हो जो न तो कामातुर हो और न ही कृपण।

भावार्थ—गृहस्थ में प्राणसाधना द्वारा हम 'अन्न के समुचित पाचनवाले, सुमति-सम्पन्न, नियमित वासनावाले, सुरक्षित इन्द्रियोंवाले व ऊर्ध्वरेतस्वाले' बनें। गृहपति न कामातुर हों, न कृपण।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**जगती**॥

सुगं तीर्थं सुप्रपाणं पथिष्ठां स्थाणुम्

सा मन्दसाना मनसा शिवेन रयिं धेहि सर्ववीरं वचस्य ∫ म्।
सुगं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथिष्ठामप दुर्मतिं हतम्॥ ६॥

१. घर में **सा**=वह पत्नी भी **मन्दसाना**=घर के सारे वातावरण में हर्ष पैदा करती हुई **शिवेन मनसा**=शुभ मन से **सर्ववीरम्**=सब वीर सन्तानोंवाले **वचस्यम्**=प्रसंशनीय (न अवद्य) **रयिं धेहि**=धन को धारण करे। पत्नी की प्रसन्नता व मनःप्रसाद घर को उत्तम सन्तानों व उत्तम धनवाला बनाता है। हे **शुभस्पती**=शरीर में (शुभ water=रेतःकण) रेतःकणों के रक्षण के द्वारा सब शुभों का रक्षण करनेवाले पति-पत्नी! आप दोनों **सुगं तीर्थम्**=सुख से जाने योग्य घाटयुक्त जलाशय को, **सुप्रपाणम्**=उत्तम प्याऊ को तथा **पथिष्ठां स्थाणुम्**=मार्ग में स्थित होनेवाले वृक्षों को धारण करो, अर्थात् वापि, कूप, तड़ाग आदि बनानेवाले बनो तथा मार्ग के दोनों ओर वृक्ष लगानेवाले होओ। ये कर्म ही तो 'आपूर्त्त' हैं। **दुर्मतिं अपहतम्**=विषय-वासना में प्रवृत्त करनेवाली दुर्मति को अपने से दूर रक्खो।

भावार्थ—गृह में पत्नी मनःप्रसाद द्वारा उत्तम सन्तान व उत्तम धन का धारण करनेवाली हो। पति-पत्नी घाटों, प्याऊ तथा वृक्षों की स्थापनारूप आपूर्त्त कर्मों को करनेवाले हों। विषय-वासना की ओर झुकाववाली दुर्मति को अपने से दूर रक्खें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोगकृमि-भय-निवारण

या ओषधयो या नद्यो ३ यानि क्षेत्राणि या वना।
तास्त्वा वधु प्रजावतीं पत्ये रक्षन्तु रक्षसः॥ ७॥

याः ओषधयः=जो ओषधियाँ हैं, **याः नद्यः**=जो नदियाँ हैं **यानि क्षेत्राणि**=जो क्षेत्र (खेत) हैं **या वना**=जो भी वन हैं, हे **वधु**=सन्तान को वहन करनेवाली पत्नि! **ताः**=वे सब **त्वा**=तुझे **पत्ये**=इस पति के हित के लिए, इसके वंश के अविच्छेद के लिए **प्रजावतीम्**=प्रशस्त प्रजा-(सन्तान)-वाला करें। ये सब तुझे **रक्षसः**=अपने रमण के लिए औरों का क्षय करनेवाले रोगकृमियों से **रक्षन्तु**=रक्षित करें।

भावार्थ—घर का सारा वातावरण इसप्रकार का हो कि वहाँ रोगकृमिजनित रोगों का भय न हो। इस स्वस्थ वातावरण में गृहपत्नी उत्तम सन्तान को जन्म देती हुई पति के वंश के अविच्छेद का कारण बने।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'सुगं स्वस्तिवाहन' पन्था

एमं पन्थामरुक्षाम सुगं स्वस्तिवाहनम्। यस्मिन्वीरो न रिष्यत्यन्येषां विन्दते वसु॥ ८॥

इमम्=इस **सुगम्**=शुभ की ओर ले-जानेवाले **स्वस्तिवाहनम्**=कल्याण प्राप्त करानेवाले **पन्थाम् आ अरुक्षाम**=मार्ग पर ही आरोहण करें। हम सदा शुभ मार्ग पर ही चलें, उस मार्ग पर चलें, जिसपर चलता हुआ **वीरः न रिष्यति**=वीरपुरुष हिंसित नहीं होता तथा **अन्येषाम्**=विलक्षण पुरुषों (Extra-ordinary) के **वसु विन्दते**=धन को प्राप्त करता है।

भावार्थ—हम उत्तम मार्ग पर चलते हुए वीर बनें, रोगादि से हिंसित न हों तथा विशिष्ट धनों को प्राप्त करें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**षट्पदाविराडत्यष्टिः**॥

गन्धर्वः व देवीः अप्सरसः

इदं सु मे नरः शृणुत ययाशिषा दंपती वाममश्नुतः।
ये गन्धर्वा अप्सरसश्च देवीरेषु वानस्पत्येषु येऽधि तस्थुः।
स्योनास्ते अस्यै वध्वै भवन्तु मा हिंसिषुर्वहतुमुद्यमानम्॥ ९॥

१. हे **नरः**=मनुष्यो! **मे**=मेरे **इदम्**=इस वचन को **सुशृणत**=सम्यक् श्रवण करो। इस वचन में उस आशीर्वाद का प्रतिपादन है, **यया आशिषा**=जिस आशीर्वाद से **दम्पती**=पति-पत्नी **वामम्**=सुन्दर गृहस्थ-जीवन को **अश्नुतः**=व्याप्त करनेवाले होते हैं। **ये गन्धर्वाः**=जो ज्ञान की वाणियों का धारण करनेवाले ज्ञानी पुरुष हैं **च**=और **देवीः अप्सरसः**=दिव्य व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली (अप्+सर) क्रियाशील देवियाँ हैं, **ये**=जो **एषु वानस्पत्येषु**=इन वनस्पतिजनित पदार्थों पर ही **अधितस्थुः**=स्थित होते हैं, अर्थात् जो कभी भी मांसाहार की ओर नहीं झुकते **ते**=वे **अस्यै वध्वै**=इस वधू के लिए **स्योनाः भवन्तु**=सुख देनेवाले हों। नवदम्पती के लिए इससे उत्तम आशीर्वाद और क्या हो सकता है कि उनके सास-श्वसुर ज्ञान की हविवाले व क्रियाशील जीवनवाले हों। ये वानस्पतिक पदार्थों का सेवन करनेवाले हों। इसप्रकार 'सास-श्वसुर' कभी भी कटुता को उत्पन्न नहीं होने देते। २. उल्लिखित 'गन्धर्व और देवी' अप्सराएँ **उह्यमानम्**=युवक व युवति से धारण किये जाते हुए इस गृहस्थ को **मा हिंसिषुः**=हिंसित न होने दें। उनका व्यवहार वधू को उत्साहित करनेवाला हो। उत्साहयुक्त हृदयवाली वधू ही गृहस्थ-रथ का सम्यक् वहन कर पाएगी।

भावार्थ—जिस युवक और युवति को उत्तम सास-श्वसुर प्राप्त होते हैं, वे उत्साहमय जीवनवाले होते हुए गृहस्थ-रथ का सम्यक् वहन कर पाते हैं। श्वसुर ज्ञानरुचिवाला हो, सास यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त हो। दोनों ही मांसभोजन से दूर रहें। इससे बढ़कर वधू का सौभाग्य नहीं। इन 'गन्धर्वों व अप्सराओं' को पाकर युवतियाँ गृहस्थ का सम्यक् वहन कर पाती हैं।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रोगनिवारण

ये वध्व ∫श्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनाँ अनु।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः॥ १०॥

१. **ये यक्ष्मा**=जो रोग **जनान् अनु**=मनुष्यों को प्राप्त होने के पश्चात् **वध्वः चन्द्रं वहतुम्**=वधू के आह्लादमय, सुन्दर शरीर-रथ को भी **यन्ति**=प्राप्त होते हैं, **तान्**=उन रोगों को **यज्ञियाः देवाः**=आदरणीय विद्वान् पुरुष **पुनः**=फिर वहाँ **नयन्तु**=प्राप्त कराएँ, **यतः आगताः**=जहाँ से कि ये आये थे। २. पुरुष का जीवन कुछ भी भोगप्रधान हुआ तो शरीर में 'यक्ष्मा' का प्रवेश हो जाता है। पुरुष से यह रोग वधू को भी प्राप्त हो जाता है। आदरणीय विद्वान् अतिथियों का

यह कर्त्तव्य होता है कि जिस कारण से ये रोग उत्पन्न होते हैं उनका ठीक से ज्ञान देकर उन कारणों को दूर करने के लिए प्रेरित करें। मुख्य बात यही है कि पति-पत्नी का जीवन भोगप्रधान न हो जाए।

भावार्थ—मनुष्य भोगप्रवण होते ही रोगों को आमन्त्रित करता है। ये रोग पत्नी को भी प्राप्त हो जाते हैं। घर में अतिथिरूपेण आने-जानेवाले विद्वानों का कर्त्तव्य होता है कि वे रोग-कारणों का ज्ञान देकर रोगों को दूर करने में सहायक हों।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

चोर आदि के भय का अभाव

मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती। सुगेन दुर्गमतीतामपद्रान्त्वरातयः॥ ११॥

१. **ये परिपन्थिनः**=जो भी चोरादि विरोधी व्यक्ति—रास्ते में लूट लेनेवाले व्यक्ति **आसीदन्ति**=इधर-उधर छिपकर बैठे होते हैं, वे इन **दम्पती**=पति-पत्नी को **मा विदन्**=प्राप्त न हों। २. हम सब बराती, बरात के लोग **दुर्गम्**=कठिनता से गन्तव्य प्रदेशों को भी **सुगेन अतिताम्**=सुगमता से लाँघ जाएँ। **अरातयः अपद्रान्तु**=शत्रु सुदूर नष्ट हो जाएँ।

भावार्थ—बारात के मार्ग में किसी प्रकार का भय न हो। चोरादि के विघ्नों से बचकर हम दुर्गम स्थलों को भी निर्विघ्नता से पार कर सकें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**जगती**॥

वहतु (a marriage)

सं काशयामि वहतुं ब्रह्मणा गृहैरघोरेण चक्षुषा मित्रियेण।
पर्याणद्धं विश्वरूपं यदस्ति स्योनं पतिभ्यः सविता तत्कृणोतु॥ १२॥

१. पति कहता है कि मैं **वहतुम्**=इस गृहस्थ-(विवाहित)-जीवन को **ब्रह्मणा**=ज्ञान से **गृहैः**=उत्तम गृह से (गृहाः पुंसि च भूम्येव) **अघोरेण मित्रियेण चक्षुसा**=क्रोध के लव से शून्य स्नेहभरी दृष्टि से **संकाशयामि**=प्रकाशमय करता हूँ। विवाह व विवाहित जीवन तभी उत्तम होता है जब पति-पत्नी ज्ञानदीप्तिवाले हों, उनके पास रहने के लिए उत्तम गृह हो तथा परस्पर क्रोधशून्य, प्रेमभरी दृष्टि से देखनेवाले हों। २. **सविता**=वह सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभु **पतिभ्यः**=पतियों के लिए **तत् स्योनं कृणोतु**=उस घर को बड़ा सुखद बनाएँ, **यत्**=जो घर **पर्याणद्धम्**=चारों ओर से सब प्रकार से बद्ध है, सुनियन्त्रित है तथा **विश्वरूपं असि**=उस सर्वव्यापक प्रभु के गुणों का निरूपण करनेवाला—प्रभु-स्तवन करनेवाला है, अर्थात् कल्याणकर घर वही होता है जिसमें सबका जीवन सुव्यवस्थित, प्रतिबद्ध है तथा जहाँ प्रातः-सायं सब घरवाले मिलकर प्रभु-स्तवन करते हैं।

भावार्थ—विवाहित जीवन के सुखी होने के लिए आवश्यक है कि (क) हम ज्ञान की रुचिवाले हों। (ख) निवास के लिए उत्तम गृह हो। (ग) परस्पर प्रेमपूर्ण दृष्टि से सब देखें। (घ) जीवन व्रतबन्ध व नियमबद्ध हों। (ङ) सब मिलकर प्रातः-सायं प्रभु का उपस्थान करते हों।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

शिवा नारी

शिवा नारीयमस्तमागन्निमं धाता लोकमस्यै दिदेश।
तामर्यमा भगो अश्विनोभा प्रजापतिः प्रजया वर्धयन्तु॥ १३॥

१. **इयम्**=यह **शिवा**=कल्याण करनेवाली **नारी**=गृहपत्नी **अस्तम् आगात्**=इस घर में आई है, **धाता**=उस सर्वाधार प्रभु ने **अस्यै**=इसके लिए **इमं लोकं दिदेश**=इस स्थान को निर्दिष्ट किया है अथवा प्रकाश को प्राप्त कराया है। प्रभु की व्यवस्था से ही एक युवति को एक नये घर के निर्माण के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है। २. **ताम्**=इस नारी को **अर्यमा**=(अरीन् यच्छति) काम-क्रोधादि शत्रुओं का नियमन **भगः**=संसार-यात्रा का साधनभूत मननीय ऐश्वर्य **उभा अश्विना**=दोनों प्राणापान—प्राण साधना द्वारा प्राणापान की शक्ति का वर्धन तथा **प्रजापतिः**=सन्तान के रक्षण की भावना **प्रजया वर्धयन्तु**=उत्तम सन्तान के द्वारा बढ़ाएँ। 'अर्यमा' आदि देव नामों से सूचित भावनाएँ ही हमें उत्तम सन्तान को प्राप्त करानेवाली होंगी।

भावार्थ—प्रभु की व्यवस्था से एक युवति एक नवगृहनिर्माण के लिए घर में आती है। इसके व्यवहार पर ही घर का कल्याण निर्भर है। घर में उत्तम सन्तानों का जन्म तभी होता है जब पति-पत्नी काम-क्रोधादि का नियमन करें, आवश्यक ऐश्वर्यों का सम्पादन करें, प्राणसाधना द्वारा प्राणापान को पुष्ट करें तथा सन्तान के संरक्षण की भावनावाले हों।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

'आत्मन्वती उर्वरा' नारी

आत्मन्वत्युर्वरा नारीयमागन्तस्यां नरो वपत बीजमस्याम्।
सा वः प्रजां जनयद्वक्षणाभ्यो बिभ्रती दुग्धमृषभस्य रेतः॥ १४॥

१. **आत्मन्वती**=प्रशस्त अन्तःकरणवाली, आत्मिक बल से युक्त **उर्वरा**=उत्तम सन्तान को जन्म देने में समर्थ **इयं नारी आगन्**=यह नारी गृहपत्नी के रूप में इस घर में आई है। हे **नरः**=उन्नति-पथ पर चलनेवाले मनुष्यो! विषयों में आसक्त न होनेवाले पुरुषो (न रमते)! **तस्याम्**=ऐसी 'आत्मन्वती उर्वरा' नारी में **बीजं वपत**=सन्तानोत्पादनक्षम वीर्य का वपन करो। २. **सा**=वह नारी **ऋषभस्य**=शक्तिशाली पुरुष के **दुग्धं रेतः**=दोहन किये गये रेतस को, वीर्य को **बिभ्रती**=धारण करती हुई **वः**=तुम्हारे लिए **वक्षणाभ्यः प्रजां जनयत्**=अपनी कोखों (वक्षणा sides, flank) से उत्तम सन्तान को जन्म दे। मनु का यह वाक्य मन्त्रांश को सुव्यक्त कर रहा है, 'क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्। क्षेत्रबीजसमायोगात् सम्भवः सर्वदेहिनाम्॥' (९.३३)। नारी क्षेत्र है, पुमान् बीज है। क्षेत्रबीज के योग से ही सब देहियों का जन्म होता है।

भावार्थ—स्त्री प्रशस्त मनवाली व सन्तानोत्पादन में समर्थ हो। वह शक्तिशाली पुरुष के वीर्य को धारण करती हुई उत्तम सन्तानों को जन्म देनेवाली हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

सरस्वती सिनीवाली

प्रति तिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति।
सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत्॥ १५॥

१. हे **सरस्वति**=ज्ञानजल को धारण करनेवाली गृहपत्नि! तू **इह प्रतितिष्ठ**=इस गृह में प्रतिष्ठित हो, तू सबसे मान प्राप्त कर। **विराट् असि**=तू विशिष्ट ही दीप्तिवाली है—तेरी शोभा निराली है। तू **विष्णुः इव**=देदीप्यमान सूर्य की भाँति है (आदित्यानामहं विष्णुः)। २. हे **सिनीवालि**=प्रशस्त अन्नोंवाली—सदा सात्त्विक अन्नों का सेवन करनेवाली गृहपत्नि! तेरी सुव्यवस्था से यह गृहपति **प्रजायताम्**=सन्तान के रूप में जन्म लेनेवाला हो (तद्धि जायाया जायात्वं यदस्यां

जायते पुनः।) इसका पति **भगस्य**=ऐश्वर्यशाली भजनीय प्रभु की **सुमतौ असत्**=कल्याणी मति में सदा निवास करे। प्रभु-प्रेरणा को प्राप्त करता हुआ, सुपथ से धर्नाजन करनेवाला हो।

भावार्थ—घर में गृहपत्नी का समुचित मान हो। वह घर में सूर्य की भाँति दीप्त हो। प्रशस्त अन्नों का सेवन करनेवाली हो, उत्तम सन्तान को जन्म दे। इसका गृहपति भी प्रभु-प्रेरणा को सुनता हुआ सुपथ से धर्नाजन करनेवाला हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अदुष्कृत् व्येनस् अघ्न्या

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत।
मादुष्कृतौ व्ये ∫नसावघ्न्यावशुनमारताम्॥ १६॥

१. हे मनुष्यो! **वः**=तुम्हारा **ऊर्मिः**=ऊपर ऊठने का उत्साह **उत्**=ऊपर और ऊपर **हन्तु**=गतिवाला हो, उन्नति के लिए उत्साह बढ़ता ही चले। **शम्याः**=शान्तगुणों से युक्त पुरुष **हन्तु**=सब बुराइयों का संहार करनेवाले हों। **आपः**=हे प्रजाओ! **योक्त्राणि**=(योजयते to censer) निन्दित कर्मों को **मुञ्चत**=छोड़ दो। २. हे स्त्रि-पुरुषो! आप **अदुष्कृतौ**=दुष्ट कर्मों से रहित हुए-हुए **विएनसौ**=विगत पापोंवाले—नष्ट पापोंवाले **अघ्न्यौ**=हिंसा से ऊपर उठे हुए होकर **अशुनम्**=दुःख को **मा आरताम्**=सर्वथा प्राप्त मत हो।

भावार्थ—गृहस्थ में मनुष्य उत्साह-सम्पन्न बनें। शान्तभाव से कर्म करते हुए बुराइयों को नष्ट करें। निन्दित कर्मों को छोड़ दें। दुष्कृत से दूर होते हुए निष्पाप बनकर अहिंसा धर्म का पालन करते हुए सुखी हों।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अघोरचक्षुः

अघोरचक्षुरपतिघ्नी स्योना शग्मा सुशेवा सुयमा गृहेभ्यः।
वीरसूर्देवृकामा सं त्वयैधिषीमहि सुमनस्यमाना॥ १७॥

१. हे नववधु! तू **अघोरचक्षुः**=आँख में क्रूरतावाली न होकर प्रिय, सौम्य दृष्टिवाली होना। **अपतिघ्नी**=किसी भी प्रकार पति के कष्टों का कारण बनकर पति के आयुष्य को नष्ट करनेवाली न होना। **स्योना**=सुख देनेवाली होना, **शग्मा**=निरन्तर उत्तम कर्मों में प्रवृत्त होना। **गृहेभ्यः**=घर में रहनेवालों के लिए **सुशेवा**=उत्तम सेवावाली तथा **सुयमा**=उत्तम नियन्त्रणवाली बनना। २. **वीरसूः**=वीर सन्तानों को जन्म देनेवाली हो, **देवृकामा**=पति के छोटे भाइयों के साथ भी मधुर, प्रीतियुक्त व्यवहारवाली होना। इसप्रकार तू सदा **सुमनस्यमाना**=सौमनस्यवाली होना—सदा प्रसन्नचित्त रहना, मनःप्रसाद को अपनाना। ऐसी जो तू है, उस **त्वया**=तेरे साथ **सम्ऐधिषीमहि**=हम सम्यक् वृद्धि को प्राप्त करें।

भावार्थ—पत्नी सदा प्रसन्नचित्त, कार्यव्यस्त, पति के दीर्घायु का कारण, सेवा की वृत्तिवाली व गृह को व्यवस्था में रखनेवाली हो। पति व घर के अन्य सब व्यक्ति इसके व्यवहार से प्रसन्न हों और घर में फूलें-फलें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

गार्हस्थ अग्नि की सपर्य

अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः।
प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य॥ १८॥

१. हे वधु! तू **इह**=इस घर में **अदेवृघ्नी अपतिघ्नी ऐधि**=देवरों व पति को नष्ट करनेवाली न होती हुई फूल-फल, अर्थात् तेरा व्यवहार भाइयों में कटुता पैदा न कर दे। परस्पर झगड़ते हुए वे अपने आयुष्य को कम न कर बैठें। **पशुभ्यः शिवा**=तू घर के गवादि पशुओं के लिए भी कल्याण करनेवाली होना—उन सबका भी पूरा ध्यान करना। **सुयमा सुवर्चाः**=तू उत्तम संयमवाली और परिणामतः उत्तम वर्चस्वाली बनना। २. संयम व सुवर्चस् जीवनवाली तू **प्रजावती**=उत्तम सन्तानवाली, **वीरसूः**=वीरों को ही जन्म देनेवाली बनना। 'कोई भी सन्तान निर्बल न हो', इस बात का पूरा ध्यान रखना। **देवृकामा**=पति के भाइयों के साथ भी मधुर व्यवहारवाली और इसप्रकार **स्योना**=घर में सुख को बढ़ानेवाली बनना। घर में सुख की वृद्धि के हेतु से ही तूने **इमं गार्हपत्यं अग्निं सपर्य**=इस गार्हपत्य अग्नि का पूजन करना—भोजन के परिपाक आदि की व्यवस्था का पूरा ध्यान करना।

भावार्थ—गृहपत्नी घर में कलह का कारण न बने, गवादि पशुओं का भी ध्यान करे। संयत जीवनवाली व वर्चस्विनी हो। उत्तम सन्तान को जन्म देती हुई घर में सुख-वृद्धि का कारण बने। भोजन के परिपाक को 'गार्हपत्य अग्नि में यज्ञ' रूप समझे। इस यज्ञ को सम्यक् करती हुई सबके स्वास्थ्य को सिद्ध करे।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

अलक्ष्मी का निर्वासन

उत्तिष्ठेतः किमिच्छन्तीदमागा अहं त्वेडे अभिभूः स्वाद् गृहात्।
शून्यैषी निर्ऋते याजगन्थोत्तिष्ठाराते प्र पत मेह रंस्था॥ १९॥

१. हे **निर्ऋते**=अलक्ष्मि! तू **इतः उत्तिष्ठ**=यहाँ से खड़ी हो। **किं इच्छन्ति इदं आ अगाः**=क्या चाहती हुई तू इस घर में आई है। **अहं त्वा ईडे**=मैं तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि तू चुपके-से चली जा। **अभिभूः स्वात् गृहात्**=मैं अपने घर से तेरा पराभव करनेवाला हूँ। तुझे इस घर से अवश्य बहिष्कृत करूँगा। २. **शून्यैषी**=घर को सूना करना चाहती हुई **या**=जो तू **आजगन्थ**=यहाँ आई है, वह तू **उत्तिष्ठ**=उठ खड़ी हो। हे **अराते**=अदान की वृत्ति, कृपणते! **प्रपत**=यहाँ से भाग जा। **इह मा रंस्था**=यहाँ तू रमण करनेवाली न हो।

भावार्थ—पति-पत्नी यह दृढ़ निश्चय करें कि उनके घर में अलक्ष्मी व अराति (अदानवृत्ति) का निवास नहीं होगा।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**पुरस्ताद्बृहती**॥

देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ

यदा गार्हपत्यमसपर्यैत्पूर्वमग्निं वधूरियम्।
अधा सरस्वत्यै नारि पितृभ्यश्च नमस्कुरु॥ २०॥

१. **यदा**=जब **इयं वधूः**=यह वधू **पूर्वम्**=पहले **गार्हपत्यं अग्निं असपर्यैत्**=गार्हपत्य अग्नि का पूजन करती है, **अधा**=अब हे **नारि**=गृहपत्नि! तू **सरस्वत्यै**=सरस्वती के लिए—ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी के लिए **च**=तथा **पितृभ्यः**=पितरों के लिए **नमस्कुरु**=नमस्कार कर। २. गार्हपत्य अग्नि का पूजन यही है कि नैत्यिक अग्निहोत्र अवश्य किया जाए तथा घर में भोजनादि की सुव्यवस्था को सुव्यवस्थित रक्खा जाए, यही देवयज्ञ है। इसके साथ गृहपत्नी का यह भी आवश्यक कर्त्तव्य है कि वह स्वाध्याय करे, यही सरस्वतीपूजन व ब्रह्मयज्ञ है। स्वाध्यायानन्तर बड़ों के चरणों में प्रणाम किया जाए, यह बड़ों को आदर देना ही पितृयज्ञ है।

भावार्थ—एक वधू घर में 'देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ व पितृयज्ञ' को अवश्य सम्पादित करनेवाली हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

शर्म-वर्म

शर्म वर्मैतदा हरास्यै नार्या उपस्तिरे। सिनीवालि प्र जायतां भगस्य सुमतावसत्॥ २१॥

१. हे प्रभो! आप **अस्यै नार्यै**=इस नारी के लिए **उपस्तिरे**=ओढ़ने के लिए **एतत्**=इस **शर्म वर्म**=सुखदायक कवचरूप गतमन्त्र में वर्णित 'देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ व पितृयज्ञ' को **आहर**=प्राप्त कराइए। ये यज्ञ इस नारी के लिए सुखप्रद कवच हों। इनसे आवृत हुई-हुई यह 'रोग, वासना व अल्पायुष्य' आदि से आक्रान्त न हो। २. हे **सिनीवालि**=प्रशस्त अन्नोंवाली नारि! तेरे द्वारा तेरा पति **प्रजायताम्**=उत्तम सन्तानोंवाला हो तथा घर की सुव्यवस्था के कारण शान्त मस्तिष्कवाला होता हुआ **भगस्य सुमतौ असत्**=ऐश्वर्य के पुञ्ज भजनीय प्रभु की कल्याणीमति में हो, अर्थात् प्रभु के निर्देशों के अनुसार यह जीवन का यापन करनेवाला बने।

भावार्थ—एक गृहपत्नी के लिए 'देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ व पितृयज्ञ' सुखदायक कवच के रूप में हों। इस कवच को धारण करके यह 'रोगों, वासनाओं व अल्पायुष्य' का शिकार न हो। इसकी सुव्यवस्था के द्वारा इसका शान्त मस्तिष्क पति उत्तम सन्तानोंवाला व प्रभु की प्रेरणा में चलनेवाला हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

'मृगचर्म पर तृणासन बिछा' उसपर बैठकर अग्निहोत्र करना

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म चोपस्तृणीथन।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम्॥ २२॥
उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते। तत्रोपविश्य सुप्रजा इममग्निं सपर्यतु॥ २३॥

१. **चर्म च उपस्तृणीथन**=जो तुम मृगचर्म बिछाते हो और उसपर **यम्**=जिस **बल्बजम्**=तृणासन को **न्यस्यथ**=स्थापित करते हो, **तत्**=उस आसन पर **सुप्रजाः**=यह उत्तम प्रजा को जन्म देनेवाली **कन्या**=कन्या **या पतिं विन्दते**=जो अभी-अभी पति को प्राप्त करती है, **आरोहतु**=आरोहण करे। इस आसन पर वह उपविष्ट हो। २. हे पुरुष! तू **रोहिते चर्मणि अधि**=रोहित मृग के चर्म (मृगचर्म) पर **बल्बजम् उपस्तृणीहि**=इस तृणासन को बिछा दे। **तत्र**=उस आसन पर **उपविश्य**=बैठकर **सुप्रजाः**=उत्तम प्रजा को जन्म देनेवाली यह कन्या **इमम् अग्निं सर्पयतु**=इस अग्नि का पूजन करे। घर में अग्निहोत्र करना आवश्यक है। यह घर के रोगकृमियों को नष्ट करके स्वास्थ्य का साधक होता है।

भावार्थ—गृहपत्नी मृगचर्म पर तृणासन बिछाकर, उसपर बैठे। वहाँ स्थिरतापूर्वक सुख से बैठकर प्रतिदिन अग्निहोत्र अवश्य करे। यह अग्निहोत्र घर की नीरोगता का साधक है।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**पुरानुष्टुप्त्रिष्टुप्**॥

अग्निहोत्र से रोगकृमि-विनाश

आ रोह चर्मोप सीदाग्निमेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा।
इह प्रजां जनय पत्ये अस्मै सुज्यैष्ठ्यो भवत्पुत्रस्त एषः॥ २४॥

१. हे गृहपत्नि! तू **चर्म आरोह**=इस मृगचर्म के आसन पर आरोहण कर। **अग्निं उपसीद**=इसपर बैठकर तू अग्नि की उपासना कर। प्रभु-स्मरणपूर्वक अग्निहोत्र करनेवाली बन। **एषः देवः**=यह रोगों को पराजित करने की भावनावाला (दिव् विजिगीषायाम्) अग्निदेव **सर्वा रक्षांसि हन्ति**=

सब रोगकृमियों का निवारण कर डालता है। २. **इह**=इस रोगशून्यगृह में **अस्मै पत्यै**=इस पति के लिए—इस पति के वंश के अविच्छेद के लिए **प्रजां जनय**=सन्तानों को जन्म देनेवाली हो। **एषः ते पुत्रः**=यह तेरा पुत्र **सुज्यैष्ठ्यः भवत्**=उत्तम ज्यैष्ठतावाला हो (शोभनं ज्यैष्ठ्यम्) यह ज्ञान, बल व धन की दृष्टि से आगे बढ़ा हुआ हो।

भावार्थ—गृहपत्नी घर में नियमितरूप से अग्निहोत्र करती हुई घर को रोगकृमिरहित बनाए। वहाँ पर उत्तम सन्तान को जन्म दे। वह सन्तान 'ज्ञान, बल व धन' की दृष्टि से अच्छी प्रकार से बढ़नेवाला हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**पुरानुष्टुप्त्रिष्टुप्**॥

श्रीर्वै पशवः

वि तिष्ठन्तां मातुरस्या उपस्थान्नानारूपाः पशवो जायमानाः।
सुमङ्गल्युप सीदेममग्निं संपत्नी प्रति भूषेह देवान्॥ २५॥

१. यहाँ घर में **अस्याः मातुः उपस्थात्**=इस भूमिमाता की गोद से **जायमानाः**=प्रादुर्भूत होते हुए **नानारूपाः पशवः**=विविधरूपोंवाले पशु **वितिष्ठन्ताम्**=विशेषरूप से स्थित हों। 'स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शं अर्वते', इस मन्त्र के अनुसार घर में गौ हो तथा घर में घोड़े का भी स्थान हो। गौ सात्त्विक दूध के द्वारा हमारे शरीर-पोषण के साथ हमारी बुद्धि का भी वर्धन करती है तथा घोड़ा व्यायाम का साधन बनकर शक्तिवर्धन का हेतु बनता है। घर में पुरुष के एक ओर गौ और घोड़े का स्थान है तो दूसरी ओर अजा (बकरी) और अवि (भेड़) का। घर में इन पशुओं के होने पर 'श्री, यश व शान्ति' बनी रहती है। विवाह-संस्कार पर वर वधू से प्रारम्भ में ही कहता है कि 'शिवा पशुभ्यः' तूने घर में इन पशुओं का भी कल्याण करनेवाली बनना। इसे 'बलिवैश्वदेवयज्ञ' समझना। २. इसप्रकार **सुमंगली**=उत्तम मंगल करनेवाली **इमं अग्निं उपसीद**=इस अग्नि का उपासन कर—प्रभु-स्मरणपूर्वक अग्निहोत्र करनेवाली बन। देवयज्ञ द्वारा तू घर को स्वस्थ व दिव्यगुणसम्पन्न बनानेवाली हो और **संपत्नी**=सदा पति का साथ देनेवाली, पति के साथ निवास करनेवाली तू **इह**=इस घर में **देवान् प्रति भूष**=(भूष् to spread) विद्वान् अतिथियों का लक्ष्य करके आसन को बिछानेवाली हो, अर्थात् अतिथियज्ञ को सम्यक् सम्पन्न करनेवाली बन। घर में आये-गये का यथोचित्त सत्कार आवश्यक ही है।

भावार्थ—घर की श्री, यश व शर्म का साधन बननेवाले, 'गौ, अश्व, अजा, अवि' रूप पशुओं का भी गृहपत्नी ध्यान करे। अग्निहोत्र को नियम से करे, अतिथियज्ञ को भी उपेक्षित न करे।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिपदाविराण्नामगायत्री, अनुष्टुप्**॥

सुमंगली-स्योना

सुमङ्गली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शंभूः॥
स्योना श्वश्रै प्र गृहान्विशेमान्॥ २६॥
स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनास्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव॥ २७॥

१. हे नववधु! **सुमंगली**=घर का उत्तम मंगल साधनेवाली, **गृहाणां प्रतरणी**=घरों को दुःख से पार लगानेवाली **पत्ये सुशेवा**=पति के लिए उत्तम सुख देनेवाली **श्वशुराय शंभूः**=श्वसुर के लिए शान्ति प्राप्त करानेवाली तथा **श्वश्रै स्योना**=सास के लिए भी सुख देनेवाली तू **इमान्**

गृहान् प्रविश=इन घरों में प्रवेश कर। २. **श्वशुरेभ्यः**=घर में श्वसुर-तुल्य बड़ों के लिए तू **स्योना भव**=सुख देनेवाली हो। **पत्ये गृहेभ्यः**=पति के लिए तथा पति की माता के लिए **स्योना**=सुख देनेवाली हो। **अस्यै सर्वस्यै विशे**=घर में स्थित इस सारी प्रजा के लिए—पति के भाइयों के लिए व उनकी सन्तानों के लिए **स्योना**=तू सुख ही देनेवाली हो। **स्योना**=सुख देनेवाली होती हुई **एषां पुष्टाय भव**=इन सबके पोषण के लिए हो। गृह में कलह सबके अकल्याण व कष्टों का कारण बनती है। यह गृहपत्नी सभी के लिए सुखकर होती हुई सबके कल्याण का ही कारण बने।

भावार्थ—गृहपत्नी ने घर में सबके मंगल व सुख को साधनेवाली बनना है। उसके कारण घर में कलह उत्पन्न न हो और सबका समुचित पोषण हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सौभाग्य के लिए आशीर्वाद

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत। सौभाग्यमस्यै दत्त्वा दौर्भाग्यैर्विपरेतन॥ २८॥
या दुर्हार्दो युवतयो याश्चेह जरतीरपि। वर्चो न्वस्यै सं दत्ताथास्तं विपरेतन॥ २९॥

१. जब बारात लौटती है तब नववधू को देखने के लिए सभी पड़ोसी बन्धु उपस्थित होते हैं। उस समय वर प्रार्थना करता है कि हे सज्जनो व बन्धुओ! **इयं वधूः सुमंगलीः**=यह नववधू उत्तम मंगलवाली है। आप सब **सम् एत**=यहाँ मिलकर उपस्थित हों और **इमाम् पश्यत**=इसे अपनी कृपादृष्टि से अनुगृहीत करो। **अस्यै**=इस नववधू के लिए **सौभाग्यं दत्वा**=सौभाग्य देकर और इसके **दौर्भाग्यैः**=दौर्भाग्यों को परे फेंकने के लिए साथ ही लेकर **विपरेतन**=घरों को लौटिए। जैसे वैद्य रोगी को स्वास्थ्य देकर व उसके रोग को ले-जाता है, उसीप्रकार सब महानुभाव इसे सौभाग्य देकर इसके दौर्भाग्यों को दूर ले-जाइए। **याः**=जो **दुर्हार्दः युवतयः**=उत्तम हृदयवाली युवतियाँ नहीं हैं, जिन्हें इस नववधू से कुछ ईर्ष्या भी है **च**=और **याः**=जो **इह**=यहाँ **जरतीः अपि**=वृद्ध स्त्रियाँ भी हैं, वे **नु**=अब **अस्यै**=इस नववधू के लिए **वर्चः संदत्त**=तेजस्विता प्रदान करें और **अथ**=अब **अस्यै**=इसके लिए **संदत्त**=मंगल आशीर्वाद दें और आशीर्वाद देने के बाद ही **अस्तं विपरेतन**=घरों को वापस जाएँ।

भावार्थ—वर चाहता है कि सभी पड़ोसी व बन्धुजन इस नववधू को सौभाग्य का आशीर्वाद दें। कुछ ईर्ष्या के होने पर भी युवतियाँ इससे आशीर्वाद ही दें। वृद्धाओं की भी यह आशीर्वादपात्र बने। ये सब इसके दौर्भाग्यों को दूर फेंकने का कारण बनें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

रुक्म प्रसारणं वह्यम्

रुक्मप्रस्तरणं वह्यं विश्वा रूपाणि बिभ्रतम्।
आरोहत्सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम्॥ ३०॥

१. **सूर्या**=सूर्यसम तेजस्विनी, **सावित्री**=उत्तम सन्तानों को जन्म देनेवाली यह वधू **बृहते सौभगाय**=महान् सौभाग्य के लिए **कं वह्यम्**=इस सुखप्रद गृहस्थ-रथ पर **आरोहत्**=आरूढ़ हुई है। यह वधू इस गृहस्थ के सौभाग्य को बढ़ानेवाली ही प्रमाणित होगी। २. यह गृहस्थ **रुक्मप्रस्तरणम्**=देदीप्यमान, शुद्ध व अलंकृत प्रस्तरणों—बिछौनोंवाला है तथा **विश्वा रूपाणि बिभ्रतम्**=(रूप cattle) गौ आदि सब पशुओं से युक्त हो। यहाँ न आवश्यक वस्त्रों की कमी है, न दूध, दही आदि की ही कमी है।

भावार्थ—वधू को 'सूर्या व सावित्री' होना है। वर को ऐसी व्यवस्था करनी है कि घर में न आवश्यक वस्त्रों की कमी हो और न शरीर के लिए आवश्यक दूधादि भोजनों की कमी हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**जगती**॥

सुमनस्यमाना

आ रोह तल्पं सुमनस्यमानेह प्रजां जनय पत्ये अस्मै।
इन्द्राणीव सुबुधा बुध्यमाना ज्योतिरग्रा उषसः प्रति जागरासि॥ ३१॥

१. हे वधु! तू **सुमनस्यमाना**=प्रसन्नचित्तवाली होती हुई **इह**=यहाँ—गृहस्थाश्रम में **तल्पं आरोहः**=पर्यंक (चारपाई) पर आरोहण कर और **अस्मै**=इस पति के लिए—इसके वंश के अविच्छेद के लिए **प्रजां जनय**=सन्तान को जन्म दे। उत्तम सन्तान के लिए पति-पत्नी की मानस प्रसन्नता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें भी पत्नी का सौमनस्य अधिक महत्त्व रखता है। २. वधू के लिए उपदेश है कि तू **इन्द्राणी इव**=इन्द्र की पत्नी के समान बन। तेरा पति भी जितेन्द्रिय हो, तू भी इन्द्रियों को वश में रखनेवाली हो। वैषयिक वृत्ति होने पर सन्तानों के उत्तम होने का प्रश्न ही नहीं होता। **सुबुधा**=तू उत्तम बोधवाली हो। **बुध्यमाना**=बड़ी समझदार—सब बातों को ठीक से समझनेवाली हो। **ज्योतिरग्राः उषसः**=नक्षत्र ताराओंवाली उषाओं में ही **प्रतिजागरासि**=तू प्रतिदिन जागनेवाली हो—सूर्य-उदय से बहुत पूर्व ही जागकर क्रियाशील होती है।

भावार्थ—सन्तानों की उत्तमता के लिए गृहिणी ने 'सदा प्रसन्न मनवाली, जितेन्द्रिय व ज्ञानरुचि, समझदार व उषाकाल में प्रबुद्ध होनेवाली' होना है। ऐसी बनकर ही वह उत्तम सन्तानों को जन्म दे पाती है।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**पुरानुष्टुप्त्रिष्टुप्**॥

पवित्र गृहस्थाश्रम

देवा अग्रे न्य ऽपद्यन्त पत्नीः समस्पृशन्त तन्व ऽस्तनूभिः।
सूर्येव नारि विश्वरूपा महित्वा प्रजावती पत्या सं भवेह॥ ३२॥

१. **अग्रे**=सृष्टि के आरम्भ में **देवाः**=देववृत्ति के पुरुषों ने **पत्नीः न्यपद्यन्त**=पत्नियों को प्राप्त किया। **तन्वः**=अपने शरीरों को **तनूभिः**=उनके शरीरों से **समस्पृशन्त**=संस्पृष्ट किया। उत्तम सन्तान को जन्म देना भी एक पवित्र कार्य ही है। देववृत्ति के पुरुष इसे स्वीकार करते हैं। २. हे **नारि**=गृहस्थ-यज्ञ को आगे ले-चलनेवाली वधु! तू **सूर्या इव**=सूर्य के समान दीप्त जीवनवाली बन। **विश्वरूपा**=सब अङ्गों में रूप-सौन्दर्यवाली हो। **महित्वा**=प्रभु-पूजन के द्वारा (मह पूजायाम्) **प्रजावती**=प्रशस्त प्रजावाली होती हुई तू **इह**=यहाँ **पत्या संभव**=पति के साथ एक होकर रहनेवाली हो। तू पति की अर्द्धांगिनी बन जा। तुम दोनों परस्पर एक हो जाओ।

भावार्थ—गृहस्थ में उत्तम सन्तान को जन्म देना एक दिव्य व पवित्र कार्य है। पत्नी सूर्यसम दीप्त हो, वह सर्वांग सुन्दर होती हुई उत्तम सन्तानवाली हो। प्रभुपूजन करती हुई पति के साथ यह एक हो जाए।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**विराडास्तारपङ्क्तिः**॥

कन्या के पिता को सर्वमहान् निर्देश

उत्तिष्ठतो विश्वावसो नमसेडामहे त्वा।
जामिमिच्छ पितृषदं न्य ऽक्तां स तेऽभागो जनुषा तस्य विद्धि॥ ३३॥

१. विवाह हो जाने पर कन्या के वियोग से कुछ अन्यमनस्क पिता से कहते हैं कि **इतः उत्तिष्ठ**=अब इस आसन से उठिए। प्रभु से आप प्रार्थना कीजिए कि हे **विश्वावसो**=सम्पूर्ण धनोंवाले, सबको बसानेवाले प्रभो! **नमसा त्वा ईडामहे**=नमन के द्वारा हम आपका पूजन करते हैं। आपसे बनाई गई इस व्यवस्था के सामने हम सिर झुकाते हैं कि कन्या को पालकर हम उसे उसके वास्तविक घर में भेज दें। २. पिता से कहते हैं कि अब तू इस विवाहित कन्या की चिन्ता छोड़कर **जामिम् इच्छ**=उस कन्या की इच्छा कर—ध्यान कर जो **पितृषदम्**=अभी पितृगृह में ही आसीन है, **न्यक्ताम्**=निश्चय से अलंकृत अङ्गोंवाली है। **जनुषा**=आपके यहाँ जन्म लेने के कारण **सः ते भागः**=वह आपका कर्त्तव्यभाग है—उसका रक्षण आपका कर्त्तव्य है। **तस्य विद्धि**=उसका ही ध्यान कीजिए।

भावार्थ—कन्या के पिता को चाहिए कि विवाहित कन्या की चिन्ता को छोड़कर वह दूसरी अविवाहित कन्या के रक्षण व पोषण का ही ध्यान करे। विवाहित कन्या की सुख-समृद्धि के लिए प्रभु की प्रार्थना अवश्य करे, परन्तु उसके लिए बहुत चिन्तित न होता रहे।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**पुरानुष्टुप्त्रिष्टुप्**॥

अप्सरसः

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च।
तास्ते जनित्रमभि ताः परेहि नमस्ते गन्धर्वतुना कृणोमि॥ ३४॥

१. **अप्सरसः**=(अप्+सर) उत्तम कर्मों में संचार करनेवाली ये नारियाँ **हविर्धानम्**=जहाँ हवि का धारण किया जाना है, उस पृथिवी, **सूर्यं च**=और जहाँ सूर्य उदय होता है उस द्युलोक के **अन्तरा**=मध्य में—अन्तरिक्ष में **सधमादं मदन्ति**=उस प्रभु के साथ उपासना में बैठकर आनन्दित होती हैं। इनका पृथिवीलोकरूप शरीर यज्ञादि उत्तम कर्मों में प्रवृत्त रहता है तथा ये शरीररूप वेदि में हविरूप पवित्र भोजन को ही प्राप्त कराती हैं। मस्तिष्करूप द्युलोक में ज्ञान के सूर्य को उदित करती हैं और हृदयान्तिरक्ष में प्रभु का उपासन करती हुई प्रभु के साथ आनन्दित होती हैं। २. हे वर! **ताः**=वे नारियाँ ही **ते जनित्रम्**=तेरी जाया हैं—तेरी सन्तान को जन्म देनेवाली हैं **ताः अभि गन्धर्वऋतुना परेहि**=उनकी ओर (परा=towards) ज्ञानी पुरुष की नियमित गति से तू प्राप्त हो। उनके साथ तेरा सम्पर्क शास्त्रविधि के अनुसार उचित ऋतु पर हो। **ते**=इसप्रकार ऋतुगामी तेरे लिए **नमः कृणोमि**=मैं नमस्कार करता हूँ। ऐसे पुरुष को प्रत्येक व्यक्ति आदर देता है।

भावार्थ—अप्सरारूप गृहनारियाँ यज्ञ करनेवाली हों, उनका भोजन भी यज्ञरूप हो। मस्तिष्करूप द्युलोक में ये ज्ञानसूर्य को उदित करें। हृदय में प्रभु का उपासन करती हुई आनन्दित हों। ज्ञानी पति इनके प्रति ऋतुगामी होता हुआ उत्तम सन्तान प्राप्त करे और आदरणीय जीवनवाला हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**पुरोबृहतीत्रिष्टुप्**॥

नमसे, भामाय चक्षुषे

नमो गन्धर्वस्य नमसे नमो भामाय चक्षुषे च कृण्मः।
विश्वावसो ब्रह्मणा ते नमोऽभि जाया अप्सरसः परेहि॥ ३५॥

१. **गन्धर्वस्य**=ज्ञान को धारण करनेवाले इस युवक को **नमसे नमः**=नम्रता के लिए अथवा शत्रुओं को झुकानेवाले बल के लिए हम नमस्कार **कृण्मः**=करते हैं **च**=और इस युवक के **भामाय**=तेजस्विता से दीप्त **चक्षुषे**=नेत्रों के लिए **नमः**=नमस्कार करते हैं। हे **विश्वावसो**=घर

में सबको बसानेवाले व सब आवश्यक धनोंवाले युवक! **ब्रह्मणा**=ज्ञान के कारण **ते नमः**=हम तेरे लिए नमस्कार करते हैं। तू **अप्सरसः**=गृहकार्यों में गतिशील **जायाः अभि**=पत्नी का लक्ष्य करके (परा towards)=**इहि** उसकी ओर जानेवाला हो।

भावार्थ—उत्तम गृहपति वही है जो 'नम्रता, उत्तम बल, दीप्त नेत्र व ज्ञान' से युक्त है। यह घर में सबको बसाने के लिए आवश्यक धनों का अर्जन करनेवाला हो। क्रियाशील पत्नी को प्राप्त होकर उत्तम सन्तान को प्राप्त करे।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**देवाः**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

धन+सौमनस

राया वयं सुमनसः स्यामोदितो गन्धर्वमावीवृताम्।
अगन्त्स देवः परमं सधस्थमगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः॥ ३६॥

१. **वयम्**=हम **राया**=धन के साथ **सुमनसः स्याम**=उत्तम मनवाले भी हों। उत्तम मनोवृत्ति के न होने पर धन हमारे विनाश का ही कारण बनेगा। **इतः उत्**=इधर से ऊपर उठकर—संसार के भोगों से ऊपर उठे हुए **गन्धर्वम्**=हम उस ज्ञान के धारक प्रभु का **आवीवृताम्**=आवर्तन करनेवाले हों—प्रभु-नाम का निरन्तर स्मरण करें। २. **सः देवाः**=वह प्रकाशमय प्रभु **परमं सधस्थम्**=सर्वोत्कृष्ट प्रभु के साथ मिलकर बैठने के स्थानभूत इस हृदयदेश में **अगन्**=प्राप्त हो। हम भी उस प्रभु के समीप **अगन्म**=प्राप्त हों, **यत्र**=जिसमें स्थित होते हुए **आयुः प्रतिरन्त**= जीवन को प्रकर्षेण पार कर पाते हैं, अत्युत्तम दीर्घजीवन प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—धन के साथ हम प्रशस्त मनवाले हों, विषयों से ऊपर उठकर प्रभु का स्मरण करनेवाले हों, वे प्रभु हमें हृदयदेश में प्राप्त हों। प्रभु में स्थित हुए-हुए हम प्रकृष्ट दीर्घ जीवन को प्राप्त करें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

ऋत्विये संसृजेथाम्

सं पितरावृत्विये सृजेथां माता पिता च रेतसो भवाथः।
मर्यइव योषामधिरोहयैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम्॥ ३७॥

१. **पितरौ**=समीप भविष्य में माता-पिता बननेवाले तुम दोनों **ऋत्विये**=ऋतुकाल के प्राप्त होने पर **संसृजेथाम्**=परस्पर संसृष्ट होओ **च**=और आप दोनों **रेतसः**=इस रेतस् के द्वारा (रज-वीर्य के द्वारा) **माता पिता भवाथः**=माता-पिता बनते हो। इस रज-वीर्य के मेल से सन्तान होती है और यह सन्तान तुम्हें माता-पिता की पदवी प्राप्त कराती है। २. हे विवाहित होनेवाले युवक! तू **मर्यः इव**=एक शक्तिशाली मनुष्य की भाँति **एनां योषाम् अधिरोहय**=इस स्त्री को अपनी शैय्या पर आरूढ़ कर। तुम दोनों **प्रजां कृण्वाथाम्**=उत्तम सन्तान का निर्माण करो और **इह**=यहाँ—इस जीवन में **रयिं पुष्यतम्**=धन का पोषण करो।

भावार्थ—ऋतुकाल में परस्पर संगत होते हुए ये वर-वधू बीजवपन के द्वारा उत्तम सन्तान को जन्म देकर माता व पिता बनें। ये जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक धन का पोषण करनेवाले हों।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पूषा शिवतमा

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति।
या न ऊरू उशती विश्रयाति यस्यामुशन्तः प्रहरेम शेपः॥ ३८॥

१. हे **पूषन्**=अपनी शक्तियों का उचित पोषण करनेवाले युवक! तू **तां शिवतमाम्**=उस अतिशयेन मंगलमय स्वभाववाली पत्नी को **एरयस्व**=प्रेरित करनेवाला हो। पति में सन्तान-प्राप्ति की कामना हो तो पत्नी को भी उस भावना से युक्त होने के लिए प्रेरित करे। उस पत्नी को तू प्रेरणा देनेवाला हो **यस्याम्**=जिसमें **मनुष्याः**=विचारशील व्यक्ति **बीजं वपन्ति**=सन्तानोत्पत्ति के लिए बीज का वपन करते हैं। २. पत्नी वही ठीक है **या**=जो **उशती**=उत्तम सन्तान की कामनावाली होती हुई **नः ऊरू विश्रयाति**=हमारे ऊरूओं को खोलनेवाली होती है। **यस्याम्**=जिसमें पति भी **उशन्तः**=उत्तम सन्तान की कामनावाले होते हुए **शेपं प्रहरेम**=जननेन्द्रिय को प्राप्त कराते हैं। सन्तान की कामना से होनेवाला यह बीजवपन 'वीर्यदान' कहलाता है। भोगवृत्ति में यही 'वीर्यविनाश' हो जाता है।

भावार्थ—पति 'पूषा' हो, पत्नी 'शिवतमा'। दोनों उत्तम सन्तान की कामनावाले होकर ही परस्पर सम्बद्ध हों। यह सम्बन्ध पवित्र होता हुआ शक्ति-विनाश का कारण न बनेगा।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**भुरिक्त्रिष्टुप्**॥

मोदमानौ

आ रोहोरुमुप धत्स्व हस्तं परि ष्वजस्व जायां सुमनस्यमानः।
प्रजां कृण्वाथामिह मोदमानौ दीर्घं वामायुः सविता कृणोतु॥ ३९॥

१. हे पूषन् (पुष्टशक्तिवाले वर)! **ऊरुं आरोह**=युवति की जाँघ पर आरोहण कर। **हस्तं उपधत्स्व**=हाथ को तकिये के रूप में सहारा देनेवाला बना और **सुमनस्यमानः**=प्रसन्नचित्तवाला होता हुआ **जायां परिष्वजस्व**=पत्नी का आलिंगन करनेवाला हो। प्रसन्नचित्तता पर ही सन्तान की उत्तमता निर्भर है। हे पूषन् और हे शिवतमे! आप दोनों **इह**=यहाँ—गृहस्थाश्रम में **मोदमानौ**=अत्यन्त हर्ष का अनुभव करते हुए **प्रजां कृण्वाथाम्**=उत्तम सन्तति का निर्माण करो। **सविता**=वह सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभु **वां आयुः**=आप दोनों के आयुष्य को **दीर्घं कृणोतु**=अत्यन्त दीर्घ करे।

भावार्थ—पति प्रसन्नता से मोदमाना पत्नी का आलिंगन करता हुआ उत्तम सन्तान को जन्म दे। इस पवित्र भावनावाले (भोगवृत्ति से ऊपर उठे हुए) पति-पत्नी के आयुष्य को प्रभु दीर्घ करें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**जगती**॥

अदुर्मङ्गली

आ वां प्रजां जनयतु प्रजापतिरहोरात्राभ्यां समनक्त्वर्यमा।
अदुर्मङ्गली पतिलोकमा विशेमं शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ ४०॥

१. **प्रजापतिः**=सब प्रजाओं का रक्षक प्रभु **वां प्रजाम्**=आप दोनों की सन्तति को **आजनयतु**=प्रादुर्भूत करे। प्रभु-कृपा से आप दोनों को उत्तम सन्तति प्राप्त हो। **अर्यमा**=शत्रुओं का नियमन करनेवाला प्रभु **अहोरात्राभ्यां समनक्तु**=दिन-रात से आपको संगत करे, अर्थात् आपके जीवन को प्रभु दीर्घ करें। वस्तुतः काम-क्रोधादि शत्रुओं को जीतना ही दीर्घजीवन का साधन है। हे युवति! तू **अदुर्मङ्गली**=सब अशुभों से रहित हुई-हुई **इमं पतिलोकं आविश**=उस पतिलोक को प्राप्त कर। पतिलोक को प्राप्त होकर तू उसे मंगलमय बनानेवाली हो। **नः**=हमारे

द्विपदे शं भव=दो पाँववाले मनुष्यादि के लिए शान्ति प्राप्त करानेवाली हो, **चतुष्पदे शम्**=चार पाँववाले गवादि पशुओं के लिए भी तू शान्ति प्राप्त करा।

भावार्थ—प्रभु-कृपा से पति-पत्नी को उत्तम सन्तान व दीर्घजीवन प्राप्त हो। पतिलोक में आती हुई युवति इस पतिलोक को मंगलमय बनाए। इस पतिलोक में मनुष्यों व पशुओं सभी को शान्ति प्राप्त हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

वाधूयं वासः, वध्वः च वस्त्रम्

देवैर्दत्तं मनुना साकमेतद्वाधूयं वासो वध्व ऽश्च वस्त्रम्।
यो ब्रह्मणे चिकितुषे ददाति स इद्रक्षांसि तल्पानि हन्ति॥ ४१॥
यं मे दत्तो ब्रह्मभागं वधूयोर्वाधूयं वासो वध्व ऽश्च वस्त्रम्।
युवं ब्रह्मणेऽनुमन्यमानौ बृहस्पते साकमिन्द्रश्च दत्तम्॥ ४२॥

१. हे बृहस्पते और इन्द्र! आप विवाह की कामनावाले एक युवक के लिए **देवैः**=दिव्यगुणों के साथ तथा **मनुना साकम्**=ज्ञान के साथ **एतत्**=इस **वाधूयं वासः**=वधू के लिए उपयुक्त गृह को **च**=तथा **वध्वः वस्त्रम्**=वधू के वस्त्र को **दत्तम्**=देते हो। यहाँ प्रभु को बृहस्पति और इन्द्र नाम से स्मरण करते हुए यह संकेत हुआ है कि एक युवक को ज्ञान प्राप्त करना है और जितेन्द्रियता द्वारा दिव्यगुण-सम्पन्न (देवराट् इन्द्र) बनना है, तभी वह उत्तम पति बन पाएगा। गृहस्थ के सम्यक् विवाह के लिए यह भी आवश्यक है कि निवास के लिए एक गृह हो और उसमें वस्त्रादि की कमी न हो। २. इस घर को **यः**=जो **चिकितुषे ब्रह्मणे**=ज्ञानी ब्राह्मण के लिए **ददाति**=देता है, **सः इत्**=वही **तल्पानि रक्षांसि**=शैय्या-सम्बन्धी राक्षसीभावों को, अर्थात् भोगविलास की वृत्तियों को विनिष्ट कर डालता है। घर को ब्राह्मण के लिए देने का भाव यह है कि घर में ज्ञानी ब्राह्मण के आने पर घर को 'आपका ही है', ऐसा कहकर उस ज्ञानी अतिथि के प्रति अर्पित करते हैं। वे ज्ञानी भी स्नेहपूर्वक घर को उत्तम बनाने की प्रेरणा देते हैं। इसप्रकार इस घर में उस ज्ञानी के सम्पर्क के कारण पवित्र भावना बनी रहती है। ३. हे **बृहस्पते**=ज्ञान के पति प्रभो! **च इन्द्रः साकम्**=और परमैश्वर्यशाली प्रभु साथ-साथ **युवम्**=आप दोनों **वधूयोः**=वधू की कामनावाले—गृहस्थ में प्रवेश की कामनावाले **मे**=मेरे लिए **यं ब्रह्मभागम्**=जिस ज्ञान के अंश को **वाधूयं वासः**=वधू के निवास के योग्य गृह को **च**=और **वध्वः वस्त्रम्**=वधू के वस्त्र को **दत्तः**=देते हो, आप उसको **ब्रह्मणे**=ज्ञानी ब्राह्मण के लिए **अनुमन्यमानौ**=अनुमति देते हुए ही **दत्तम्**=देते हो। आप मुझे यह अनुकूल मति भी प्राप्त कराते हो कि मैं उस घर को ज्ञानी ब्राह्मण के लिए अर्पित करनेवाला बनूँ। यह ब्राह्मण-सत्कार ही इस घर को पवित्र बनाए रक्खेगा।

भावार्थ—'बृहस्पति व इन्द्र' नाम से प्रभु-स्मरण करता हुआ युवक ज्ञानी व जितेन्द्रिय बनकर दिव्यगुणों को धारण करे। गृहस्थ के निर्वाह के लिए गृहसामग्री को जुटाने के लिए यत्नशील हो। अपने घर को वह ज्ञानी ब्राह्मण के प्रति अर्पित करने की वृत्तिवाला बनकर घर को विलास का शिकार होने से बचा लेता है।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुब्गर्भापङ्क्तिः**॥

सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ

स्योनाद्योनेरधि बुध्यमानौ हसामुदौ महसा मोदमानौ।
सुगू सुपुत्रौ सुगृहौ तराथो जीवावुषसो विभातीः॥ ४३॥

१. **स्योनात् योनेः अधिबुध्यमानौ**=सुखकर घर के हेतु से आधिक्येन प्रबुद्ध (जागरित), सावधान होते हुए, अर्थात् प्रमाद, आलस्य व निद्रा से ऊपर उठकर घर को सुखमय बनाते हुए **हसामुदौ**=हँसी के साथ प्रसन्न होते हुए **महसा मोदमानौ**=तेजस्विता से आनन्दित होते हुए **सुगू**=उत्तम इन्द्रियोंवाले व उत्तम गौओंवाले **सुपुत्रौ**=उत्तम सन्तानोंवाले और इसप्रकार **सुगृहौ**=उत्तम गृहोंवाले **जीवौ**=जीवनीशक्ति से परिपूर्ण आप दोनों पति-पत्नी **विभातीः उषसः तराथः**=देदीप्यमान उषाकालों को तैरनेवाले बनो।

भावार्थ—घर को उत्तम बनाने के लिए आवश्यक है कि पति-पत्नी प्रबुद्ध हों, प्रसन्न हों, तेजस्विता से प्रफुल्लित हों। उत्तम गौओं, उत्तम सन्तानों व उत्तम घरोंवाले होकर जीवनीशक्ति से परिपूर्ण होते हुए उषाकालों को तैरनेवाले बनें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**प्रस्तारपङ्क्तिः**॥

नवं वसानः सुरभिः सुवासाः

नवं वसानः सुरभिः सुवासा उदागां जीव उषसो विभातीः।
आण्डात्पतत्रीवामुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि॥ ४४॥

१. एक गृहस्थ प्रार्थना करता है कि मैं **नवं वसानः**=(नु स्तुतौ) स्तुति को धारण करता हुआ—प्रभु स्मरण को—प्रणवजप को अपना कवच बनाता हुआ **सुरभिः**=सुगन्धित, पापशून्य, यशस्वी जीवनवाला **सुवासाः**=उत्तम वस्त्रों को धारण किये हुए **जीवः**=जीवनशक्ति से परिपूर्ण मैं **विभातीः उषसाः**=देदीप्यमान उषाओं में **उत् आगाम्**=शैय्या से उठ खड़ा होऊँ—बिछौनों को छोड़कर कर्त्तव्यकर्मों में तत्पर होऊँ। २. इसप्रकार सदा उषाकाल में जागता हुआ मैं **विश्वस्मात् एनसः**=सब पापों से इसप्रकार **परि अमुक्षि**=दूर होऊँ **इव**=जैसेकि **आण्डात्पतत्री**=अण्डे से पक्षी मुक्त हो जाता है।

भावार्थ—प्रणवजप करते हुए हम सुगन्धित जीवनवाले बनें, उषाकाल में प्रबुद्ध हों। पाप से सर्वथा मुक्त होकर दीप्तजीवनवाले हों।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

ज्ञान व पवित्रता

शुम्भनी द्यावापृथिवी अन्तिसुम्ने महिव्रते।
आपः सप्त सुस्रुवुर्देवीस्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः॥ ४५॥

१. **द्यावापृथिवी**=हमारे मस्तिष्क व शरीर **शुम्भनी**=ज्ञान और शक्ति-सम्पन्न होते हुए जीवन को शोभायमान करें। **अन्तिसुम्ने**=ये हमें प्रभु के सामीप्य में सुख प्राप्त करानेवाले हों। **महिव्रते**=महनीय व्रतोंवाले हों। 'द्यौरहं पृथिवी त्वम्', वर से उच्चारण किये जानेवाले इस वाक्य के अनुसार प्रकाशमय जीवनवाला 'वर' द्यौ है तथा पृथिवी के समान अपने व्रतों पर दृढ़ रहनेवाली वधू पृथिवी है। ये अपने जीवन को शोभायुक्त करें, प्रभु सामीप्य का आनन्द अनुभव करें और महनीय व्रतोंवाले हों। २. हमारे जीवनों में **सप्त देवीः आपः सुस्रुवुः**='दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँख व मुख' इन सप्त ऋषियों से प्रवाहित होनेवाले दिव्यज्ञानजल बहें। **ताः**=वे दिव्यज्ञानजल **नः**=हमें **अंहसा मुञ्चन्तु**=पाप से छुड़ाएँ। ज्ञान हमारे जीवनों को पवित्र करे।

भावार्थ—हमारे मस्तिष्क व शरीर शोभासम्पन्न हों। हमारे जीवनों में 'दो कान, दो नासिका-छिद्र, दो आँखें व मुख' इन सप्त ऋषियों से उद्भूत हुए ज्ञानजल पवित्रता लानेवाले हों।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

कन्या के प्रस्थानकाल में 'नमस्कार'

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च।
ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः॥ ४६॥

१. विदा के समय कन्या के पिता सर्वप्रथम अपनी कन्या को ही नमस्कार करते हैं। **सूर्यायै नमः अकरम्**=सूर्या को मैं नमस्कार करता हूँ। सूर्या को मैं यही कहना चाहता हूँ कि तूने कुल की लाज रखने के लिए शुभ व्यवहार ही करना, नमस्करणीय ही बने रहना। **देवेभ्यः**=बारात में आये हुए देवों के लिए भी मैं नमस्कार करता हूँ। आप सबने यहाँ आकर इस प्रसंग की शोभा बढ़ाकर मुझे कृतकृत्य किया है। **मित्राय वरुणाय च**=वर के माता-पिता के लिए जोकि स्नेह व निर्द्वेषता की भावना से ओत-प्रोत हैं, मैं नमस्कार करता ही हूँ। आप इस नवदम्पती में भी स्नेह व निर्द्वेषता के भावों को भरने का अनुग्रह करना। २. **ये**=जो **भूतस्य**=प्राणियों के **प्रचेतसः**=प्रकृष्ट ध्यान करनेवाले देव हैं, उन सब देवों के लिए **इदं नमः अकरम्**=इस नमस्कार को करता हूँ। सब देव इस नवदम्पती का रक्षण करें, इसकी समृद्धि का कारण बनें।

भावार्थ—कन्यापक्षवालों को चाहिए कि विदा के समय अपनी कन्या को उत्तम प्रेरणा करते हुए सबको नमस्कारपूर्वक उचित आदर के साथ विदा करें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**पथ्याबृहती**॥

शरीर की अद्भुत रचना

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरूवसुर्निष्कर्ता विहुतं पुनः॥ ४७॥

१. **यः**=जो प्रभु **अभिश्रिषः ऋतेचित्**=सन्धान द्रव्य के बिना ही **जत्रुभ्यः आतृदः पुरा**=ग्रीवास्थिवाले स्थान से कट जाने से पूर्व **सन्धिं सन्धाता**=जोड़ को फिर से मिला देनेवाले हैं। वे प्रभु सचमुच **मघवा**=परम ऐश्वर्यवाले हैं। प्रभु ने शरीर की व्यवस्था ही इसप्रकार से की है कि सब घाव फिर से भर जाते हैं। गर्दन ही कट जाए तो बात अलग है, अन्यथा सब कटाव फिर से जुड़ जाते हैं। २. **पूरू वसुः**=वे पालक और पूरक वसुओंवाले प्रभु **पुनः**=फिर से **विहुतं निष्कर्ता**=कटे हुए को ठीक कर देनेवाले हैं। सब कटाओं को फिर से भर देते हैं। शरीर में प्रभु ने यह अद्भुत ही व्यवस्था की है।

भावार्थ—शरीर में प्रभु ने क्या ही अद्भुत रचना की है कि बड़े-से-बड़ा घाव भी फिर से भर जाता है। हम भी प्रभुस्मरण करते हुए पारस्परिक मानस घावों को फिर से भरनेवाले हों।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**सतःपङ्क्तिः**॥

'नीलं पिशङ्गं लोहितम्' तमः

अपास्मत्तम उच्छतु नीलं पिशङ्गमुत लोहितं यत्।
निर्दहनी या पृषातक्य[1]स्मिन्तां स्थाणावध्या सजामि॥ ४८॥

१. हे प्रभो! **अस्मत्**=हमसे **तमः अपउच्छतु**=अविद्यान्धकार दूर हो, **यत्**=जो अविद्यान्धकार **नीलम्**=अत्यन्त कृष्णवर्ण का है—अँधेरे को लाकर जो हमें प्रमाद, आलस्य व निद्रा में ले-जानेवाला है, वह अविद्यान्धकार भी दूर हो (यत्)=जो **पिशङ्गम्**=पिशङ्ग, कपिलवर्ण का है, जो हमें प्रत्येक वस्तु के विश्लेषण में प्रवृत्त करनेवाला है, जिसके कारण वस्तु का विश्लेषण

करते हुए हम कर्त्तव्यकर्मों को भी विस्मृत कर देते हैं, यह भी एक आसंग ही है। इसे ही 'ज्ञानसंग' कहा गया है। **उत**=और यह अविद्यान्धकार भी **यत्**=जोकि **लोहितम्**=लालवर्ण का है। जो तेजस्विता के अतिरेक में हमें निरन्तर इधर-उधर भटकाता है, जो हमें यश व धन की कामना से बाँधकर कर्त्तव्यविमुख कर देता है। २. **निर्दहनी**=निश्चय से जलन को उत्पन्न करनेवाली **या**=जो **पृषातकी**=(पृष् vese, pain, veary) अन्ततः पीड़ित करनेवाली यह अविद्या है, **ताम्**=इस अविद्या को **अस्मिन् स्थाणौ**=इस वृक्ष के ठूँठ में **अध्यासजामि**=आसक्त करता हूँ। उस अविद्या को इन स्थानों को अर्पित करके मैं अविद्या से मुक्त होता हूँ। 'स्थाणु' शब्द का अर्थ प्रभु भी है। उस प्रभु में स्थित हुआ-हुआ मैं इस अविद्या को अपने से दूर करता हूँ और इन वृक्षों में उसे स्थापित करता हूँ।

भावार्थ—हम सब प्रकार के अज्ञान को अपने से दूर करें। प्रभु का स्मरण हमारे जीवन को प्रकाशमय बनाएगा।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

व्यृद्धि व असमृद्धि से दूर

यावतीः कृत्या उपवासने यावन्तो राज्ञो वरुणस्य पाशाः।
व्यृ ∫ द्धयो या असमृद्धयो या अस्मिन्ता स्थाणावधि सादयामि॥ ४९॥

१. अग्निहोत्र की प्रज्वलित अग्नि में कई कृमियों का नाश तो होता ही है, अतः कहते हैं कि **उपवासने**=यज्ञादि की अग्नि के प्रज्वलन (Kindling a sacred fire) में **यावतीः कृत्या**=जो भी हिंसाएँ हो जाती हैं, **यावन्तः**=जितने भी अनृतवादी के लिए **राज्ञः वरुणस्य पाशाः**=राजा वरुण के पाश हैं, **याः व्यृद्धयः**=जो भी अनेश्वर्य हैं, **याः असमृद्धयः**=(समृद्धि power) जो शक्तिशून्यताएँ हैं, **ताः**=उन सबको **अस्मिन् स्थाणौ**=इस स्थिर और अविचल प्रभु में स्थित होता हुआ मैं **अधिसादयामि**=विनष्ट करता हूँ।

भावार्थ—प्रभुस्मरण द्वारा 'हिंसा, असत्य, दौर्भाग्य व शक्तिशून्यता' को दूर करके हम उत्तम जीवनवाले बनते हैं। प्रभुस्मरण हमें अहिंसक, सत्यवादी, सौभाग्यसम्पन्न व समृद्ध बनाता है।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**उपरिष्टान्निचृद्बृहती**॥

पवित्र यज्ञमय सम्बन्ध

या मे प्रियतमा तनूः सा मे बिभाय वाससः।
तस्याग्रे त्वं वनस्पते नीविं कृणुष्व मा वयं रिषाम॥ ५०॥

१. 'कन्धे पर बोझ पड़ना' एक शब्दप्रयोग है, जिसका भाव कन्धे पर एक उत्तरदायित्व का आ जाना है। एक युवक के कन्धे पर अब एक युवति का यह वस्त्र आ पड़ा है तो वह 'उसके उत्तरदायित्व की वृद्धि हो जाती है', इतना ही नहीं अपितु उसके भोगविलास में डूब जाने की आशंका भी बढ़ जाती है, अतः युवक कहता है कि **या**=जो **मे प्रियतमा तनूः**=मेरा यह प्रियतम—प्यारा व सुन्दर प्रतीत होनेवाला शरीर है, **मे सा**=मेरा वह शरीर **वाससः बिभाय**=इस मेरे कन्धे पर आ जानेवाले वस्त्र से भयभीत होता है। मुझे भय प्रतीत होता है कि कहीं विलास में पड़कर मैं इस प्रियतम तनू को विकृत न कर बैठूँ। हे **वनस्पते**=यज्ञस्तम्भ (sacrificial post) **त्वम्**=तू **अग्रे**=पहले **तस्य**=उसके वस्त्र की **नीविं कृणुष्व**=ग्रन्थि (Knot) को कर। पहले वह वस्त्र तेरे साथ बँधे और बाद में मेरे साथ। यज्ञस्तम्भ के साथ युवति के वस्त्र-बन्धन का भाव यह कि इस युवक-युवति का सम्बन्ध मिलकर यज्ञ करने के लिए हो।

यज्ञीय वृत्ति के होने पर हम विलासमय जीवन में न डूबेंगे और इसप्रकार **वयम्**=हम **मा रिषाम**=हिंसित न होंगे। पति-पत्नी तो यज्ञमय जीवन होने पर हिंसित होंगे ही नहीं, ऐसा होने पर उनके सन्तान भी उत्तम होंगे। यही भाव 'वयम्' इस बहुचनान्त शब्द से संकेतित हो रहा है।

भावार्थ—एक युवति का वस्त्र एक युवक के कन्धे पर पड़ता है तो उस समय यह सम्बन्ध की पवित्रता को बनाये रखने के लिए इस वस्त्र-ग्रन्थि को पहले यज्ञस्तम्भ से करता है, अर्थात् प्रभु से यही प्रार्थना करता है कि हमारा यह सम्बन्ध यज्ञिय हो। हम मिलकर यज्ञ करते हुए विलासी वृत्ति से बचे रहें। इसप्रकार हम स्वस्थ हों और उत्तम सन्तानों को प्राप्त करें। इसी उद्देश्य से अगले मन्त्र में कहेंगे कि स्त्रियाँ अपने अतिरिक्त समय को वस्त्रों को कातने व बुनने में व्यतीत करें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**भुरिगनुष्टुप्**॥

गृह में ही वस्त्र निर्माण

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः।
वासो यत्पत्नीभिरुतं तन्न स्योनमुप स्पृशात्॥ ५१॥

१. **ये अन्तः**=जो वस्त्रों की झालरें हैं, **यावतीः सिचः**=जितनी किनारियाँ हैं, **ये ओतवः**=जो उनके बाने हैं **च**=और **ये तन्तवः**=जो ताने के सूत्र हैं, इस प्रकार **यत् वासः**=जो वस्त्र **पत्नीभिः उतम्**=गृहदेवियों ने ही बुना है, **तत्**=वह **स्योनम्**=सुखकर वस्त्र ही **नः उपस्पृशात्**=हमारे शरीर को छूए। २. स्त्रियों का अतिरिक्त समय वस्त्र-निर्माण में व्यतीत होकर उन्हें भोगविलास की वृत्ति से ऊपर उठनेवाला बनाए। इसप्रकार प्रत्येक युवति देश के ऐश्वर्य की वृद्धि में भी कुछ-न-कुछ सहायक हो रही होगी और समय को भी उत्तमता से व्यतीत कर पाएगी। वस्तुतः इन वस्त्रों के एक-एक तार में प्रेम भी ग्रथित हुआ-हुआ होता है। उस वस्त्र को धारण करके प्रेम की पवित्र भावना में भी वृद्धि होती है। यान्त्रिक वस्त्र 'मृत'-सा होता है तो यह 'जीवित' होता है। यान्त्रिक वस्त्रों में केवल 'सौन्दर्य' है तो गृह के वस्त्र में प्रेममय सौन्दर्य है।

भावार्थ—गृहिणियाँ अपने अतिरिक्त समय का घर के वस्त्रों के निर्माण में सदुपयोग करें। इसप्रकार वे ऐश्वर्य-वृद्धि में व विलासवृत्ति-विनाश में सहायक बनेगी।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**विराट्परोष्णिक्**॥

दीक्षा अवसर्जन

उशतीः कन्यला इमाः पितृलोकात्पतिं यतीः। अव दीक्षामसृक्षत स्वाहा॥ ५२॥

१. **उशतीः**=पतिलोक की कामना करती हुई **इमाः कन्यलाः**=ये कन्याएँ—दीप्त जीवनवाली युवतियाँ **(कन दीप्तौ), पितृलोकात् पतिं यतीः**=पितृलोक से पति की ओर जाती हुई **दीक्षाम्**=व्रत-संग्रह को **अव असृक्षत्** (to form, to create)=निर्मित करती हैं। गृह के उत्तम निर्माण के लिए व्रत के बन्धन में अपने को बाँधकर पतिगृह की ओर जाती हैं। २. इसके लिए **स्वाहा**=वे महान् स्वार्थ-त्याग करती हैं। वस्तुतः 'वर्षों एक गृह से सम्बद्ध रहकर उसे छोड़कर अन्यत्र जाना' त्याग तो है ही और अपने कन्धों पर एक नवगृह-निर्माण के भार को उठाना भी त्याग ही है। इस उत्तरदायित्व को समझने पर विलास में डूबने की आशंका नहीं रहती।

भावार्थ—एक दीप्त जीवनवाली युवति पितृगृह से पतिगृह की ओर जाती है। इस समय यह व्रतों को आधार बनाकर उत्तम गृह के निर्माण में अपनी आहुति दे डालती है। इसी से जीवन की पवित्रता बनी रहती है।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

वर्चः, तेजः, भगः, यशः, पयः, रसः

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वेदेवा अधारयन्।
वर्चो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि॥ ५३॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वेदेवा अधारयन्।
तेजो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि॥ ५४॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वेदेवा अधारयन्।
भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि॥ ५५॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वेदेवा अधारयन्।
यशो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि॥ ५६॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वेदेवा अधारयन्।
पयो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि॥ ५७॥
बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वेदेवा अधारयन्।
रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि॥ ५८॥

१. **बृहस्पतिना**=उस ब्रह्मणस्पति—ज्ञान के स्वामी प्रभु से **अवसृष्टा**=(form, create), वेदवाणी में प्रतिपादित कर्त्तव्यदीक्षा को **विश्वेदेवाः**=देववृत्ति के सब विद्वान् **आधारयन्**=धारण करते हैं। गृहस्थ बनने पर देववृत्ति के पुरुष प्रभु-प्रतिपादित कर्त्तव्यों का पालन करने के लिए यत्नशील होते हैं। २. गृहस्थ में प्रवेश करने पर इन देवों का यही संकल्प होता है कि **यत् वर्चः**=जो वर्चस्, रोगनिरोधक शक्ति **गोषु प्रविष्टम्**=इन वेदवाणियाँ में प्रविष्ट है, **तेन**=उस वर्चस् से **इमाम्**=इस युवति को **संसृजामसि**=संसृष्ट करते हैं, अर्थात् वेदोपदिष्ट कर्त्तव्यों का पालन करते हुए हम वर्चस्वी जीवनवाले बनते हैं। ३. इसी प्रकार इन वाणियों में जो **तेजः प्रविष्टम्**=तेज प्रविष्ट है, उस तेज से इसे संयुक्त करते हैं। **यः भगः प्रविष्टः**=इनमें जो ऐश्वर्य निहित है, **यत् यशः**=जो यश स्थापित है, **यत् पयः**=जो आप्यायन (वर्धन) निहित है तथा **यः रसः**=जो रस, आनन्द विद्यमान है, उससे इस युवति को संसृष्ट करते हैं।

भावार्थ—देववृत्तिवाला पति स्वयं वेदवाणी से अपना सम्बन्ध बनाता है, अपनी पत्नी को भी इस सम्बन्ध की महत्ता समझाता है। इस वेदवाणी के द्वारा वे 'वर्चस्, तेज, ऐश्वर्य, यश, शक्तिवर्धन व आनन्द' को प्राप्त करते हैं। इनसे युक्त होकर वे गृह को स्वर्गोपम बनाते हैं।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—५९, ६०, ६२ **पथ्यापङ्क्तिः**, ६१ **त्रिष्टुप्**॥

अघ-निवारक 'अग्नि व सविता'

यदीमे केशिनो जना गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वन्तो ३ घम्।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम्॥ ५९॥
यदीयं दुहिता तव विकेश्यरुदद् गृहे रोदेन कृण्वत्यघम्।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम्॥ ६०॥
यज्जामयो यद्युवतयो गृहे ते समनर्तिषू रोदेन कृण्वतीरघम्।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम्॥ ६१॥

यत्ते प्रजायां पशुषु यद्वा गृहेषु निष्ठितमघकृद्भिरघं कृतम्।
अग्निष्ट्वा तस्मादेनसः सविता च प्र मुञ्चताम्॥ ६२॥

१. **यदि**=यदि **इमे**=ये **केशिनाः जनाः**=बिखरे हुए बालोंवाले लोग **ते गृहे**=तेरे घर में **अघं कृण्वन्ति**=(अघः pain, grief, distress) शोक करते हुए **रोदेन समनर्तिषुः**=नाच-कूद करने लगें—बिलखें तो **तस्मात् एनसः**=उस (एनस् unhappiness), निरानन्दता से—दुःखमय वातावरण से **अग्निः सविता च**=अग्नि और सविता—वह अग्रणी, सर्वोत्पादक प्रभु **त्वा प्रमुञ्चताम्**=तुझे मुक्त करें। तुम्हारे अन्दर आगे बढ़ने की भावना हो तथा निर्माण के कार्यों में लगे रहने की प्रवृत्ति हो। ऐसा होने पर घर में इसप्रकार बिलख-बिलखकर रोने के दृश्य उपस्थित न होंगे। २. **यदि इयम्**=यदि यह **तव दुहिता**=तेरी दूरेहिता—विवाहिता कन्या **विकेशी**=बालों को खोले हुए **गृहे अरुदन्**=घर में रोती है और **रोदेन**=अपने रोने से **अघं कृण्वती**=दुःख के वातावरण को उपस्थित कर देती है और इसीप्रकार **यत्**=जो **जामयः**=तेरी विवाहिता बहिनें, **यत् युवतयः**=और युवति कन्याएँ **ते गृहे समनर्तिषुः**=तेरे घर में नाच-कूद मचा देती है और **रोदेन अघं कृण्वति**=रोने के द्वारा दुःखमय वातावरण बना देती हैं, इसीप्रकार **यत्**=जो **ते प्रजायाम्**=तेरी सन्तानों में, **पशुषु**=गवादि पशुओं में **यत् वा**=अथवा **गृहेषु**=पत्नी में **अघकृद्भिः**=किन्हीं पापवृत्तिवालों ने **निष्ठितम् अघं कृतम्**=(निष्ठितम्=firm, certain) निश्चितरूप से स्थाई कष्ट उत्पन्न कर दिया है तो अग्नि और सविता तुझे उस कष्ट से मुक्त करें। वस्तुतः आगे बढ़ने की भावना से और घर में सबके निर्माण-कार्यों में लगे रहने से इसप्रकार के कष्टों में रोने के अवसर उपस्थित ही नहीं होते। सामान्यतः घरों में शान्ति बनी रहती है। अग्नि व सविता की उपासना के अभाव में अज्ञान की वृद्धि होती है, दुःखद घटनाएँ उपस्थित हो जाती हैं और रोने-धोने के दृश्य उपस्थित हुआ करते हैं।

भावार्थ—यदि घरों में सब आगे बढ़ने की भावना से युक्त हों और निर्माण के कार्यों में प्रवृत्त रहें तो व्यर्थ के कलहों के कारण रोने-धाने के दृश्य उपस्थित ही न हों।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

पूल्य आववन

इयं नार्युप ब्रूते पूल्यान्यावपन्तिका। दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम्॥ ६३॥

१. **इयं नारी**=यह नारी **पूल्यानि अवपन्तिका**=पूल्यों का वपन करती हुई (पूल to collect) संग्रह-कार्यों के बीज का वपन करती हुई, अर्थात् घर में मेल व निर्माण के कार्यों की ही प्रवृत्ति को पैदा करती हुई **उपब्रूते**=प्रभु से प्रार्थना करती है कि—**मे पतिः दीर्घायुः अस्तु**=मेरा पति दीर्घजीवी हो, **शरदः शतं जीवाति**=वे सौ वर्ष के पूर्ण आयुष्य तक जीनेवाले बनें। २. वस्तुतः स्त्री के संग्रहात्मक कार्यों से घर का वातावरण उत्तम बना रहता है और पति का जीवन आनन्दमय व दीर्घ होता है। इस नारी के विग्रहात्मक कार्य ही घर के वातावरण को कलहमय बनाकर पति के जीवन को निरानन्द व अल्प कर देते हैं।

भावार्थ—घर में नारी इसप्रकार वर्ते कि परस्पर सबका मेल बना रहे और प्रसन्नता से पति का जीवन दीर्घ हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

चक्रवाकः इव दम्पती

इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती। प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम्॥ ६४॥

१. हे **इन्द्र**=सब शत्रुओं का विद्रावण करनेवाले ऐश्वर्यशाली प्रभो! **इह**=इस घर में **इमौ दम्पती**=इन पति-पत्नी को **चक्रवाकः इव**=चकवा-चकवी की भाँति **संनुद**=प्रेरित कीजिए। 'चक्रवाक' की भावना है 'चक तृप्तौ, वच भाषणे', जो तृप्त हैं, असन्तुष्ट नहीं और प्रभु का गुणगान करते हैं। घर में पति-पत्नी काम-क्रोध से ऊपर उठे हुए, आवश्यक ऐश्वर्य से युक्त हुए-हुए प्रसन्नतापूर्वक प्रभु का स्मरण करनेवाले हों। २. **एनौ**=ये सन्तुष्ट व प्रभु-स्मरणयुक्त पति-पत्नी **प्रजया**=उत्तम सन्तान के साथ **स्वस्तकौ**=उत्तम गृहवाले होते हुए **विश्वं आयुः**=पूर्ण जीवन को **व्यश्नुताम्**=प्राप्त करें। इनके शरीर स्वस्थ हों। मन पवित्र हों तथा मस्तिष्क सुलझे हुए हों।

भावार्थ—प्रभुकृपा से घर में पति-पत्नी पुरुषार्थ के साथ प्रभु-स्मरण करते हुए पवित्र ऐश्वर्यवाले हों। उत्तम सन्तान को प्राप्त करके अपने घर को शुभ बनाएँ और पूर्ण जीवन प्राप्त करें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

आ-स्नान

यदा॑स॒न्द्यामु॑प॒धाने॒ यद्वो॑प॒वास॑ने कृ॒तम्।
वि॒वा॒हे कृ॒त्यां यां च॒क्रुरा॒स्ना॒ने॒ तां नि द॑ध्मसि॥ ६५॥

१. **यत्**=जो **आसन्द्याम्**=कुर्सी में बैठने के उपकरणभूत आसन में, **उपधाने**=तकिये में, **यत् वा**=अथवा **उपवासने**=अग्नि के प्रज्वलन में (kindling of fire) **कृतम्**=दोष उत्पन्न कर दिया गया है अथवा **विवाहे**=विवाह के सारे कार्यक्रम में **यां कृत्यां चक्रुः**=जिस छेदन-भेदन की क्रिया को दुष्ट लोग कर देते हैं **ताम्**=उस सबको **आस्नाने निदध्मसि**=(षण शौचे) सर्वतः शोधन प्रक्रिया के द्वारा (निधा=put down, remove, end) समाप्त करते हैं। २. कुर्सी को एकबार हाथ से ठीक प्रकार हिलाकर तभी उसपर बैठना चाहिए इससे उसमें कुछ विकार होगा तो उसका पता लग जाएगा। सिरहाने व बिस्तरे को भी एकबार झाड़ लेना ठीक है। अग्नि प्रज्वलन में तो सावधानी नितान्त आवश्यक है ही। विवाह के अवसर पर जागरूकता के अभाव में अधिक हानि हो जाने की सम्भावना होती ही है।

भावार्थ—कुर्सी पर बैठने, तकिये पर सिर रखने, अग्नि के प्रज्वलन व विवाह-कार्य के समय जागरूक होते हुए शोधन आवश्यक है, अन्यथा हानि की सम्भावना बनी रहती है।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

सम्भल का कम्बल

यदु॑ष्कृ॒तं यच्छम॑लं विवा॒हे व॑ह॒तौ च॒ यत्।
तत्सं॑भ॒लस्य॑ कम्ब॒ले मृ॒ज्महे॑ दुरि॒तं व॒यम्॥ ६६॥

१. **यत्**=जो **विवाहे**=विवाह के अवसर पर **वहतौ च**=और दहेज में या रथ में, जिसमें बैठकर पतिगृह की ओर जाया जाता है, उस रथ में **यत्**=जो **दुष्कृतम्**=अशुभ हो जाता है, **यत्**=जो **शमलम्**=शान्तिभंग का कारणभूत विघ्न हो जाता है, **तत् दुरितम्**=उस सब अशुभ आचरण को **वयम्**=हम **सम्भलस्य**=सम्यक् परिभाषण करनेवाले—ठीक प्रकार से बात करनेवाले पुरुष के **कम्बले**=मधुरवाणीरूप जल में (कम्बलम्=जलम्) **मृज्महे**=धो डालते हैं।

भावार्थ—विवाह के अवसर पर तथा रथ द्वारा पतिगृह की ओर प्रस्थान के अवसर पर मधुरता से व्यवहार करते हुए हम सब अशुभों व अशान्तियों को दूर करते हैं।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

यज्ञिय व शुद्ध दीर्घजीवन

संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम्।
अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्र ण आयूंषि तारिषत्॥ ६७॥

१. **सम्भले**=सम्यक् परिभाषण में **मलं सादयित्वा**=सब मल को विनष्ट करके **वयम्**=हम **कम्बले**=मधुरवाणीरूप जल में **दुरितम्**=सब दुरित को दूर करके **यज्ञियाः**=यज्ञ करने के योग्य **शुद्धा अभूम**=शुद्ध हो जाते हैं। प्रभु **नः आयूँषि प्रतारिषत्**=हमारे जीवनों को दीर्घ करें।

भावार्थ—हम सम्यक् परिभाषणरूप जलों में सब मल व दुरितों को दूर करके पवित्र जीवनवाले बनें और प्रभु के अनुग्रह से दीर्घजीवी हों।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**पुरउष्णिक्**॥

कृत्रिम कण्टक

कृत्रिमः कण्टकः शतदन्य एषः। अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात्॥ ६८॥

१. **यः**=जो **एषः**=यह **शतदन्**=सैकड़ों दाँतोंवाली **कृत्रिमः**=शिल्पियों द्वारा निर्मित **कण्टकः**=कंघी है, वह **अस्याः**=इस वधू के **केश्यम्**=केशों में होनेवाले **शीर्षण्यं मलम्**=सिर के मल को **अपलिखात्**=दूर व सुदूर कर दे। २. कंघी से बाहर से सिर-शुद्धि इसप्रकार हो जाती है कि उसमें किसी प्रकार की जुएँ आदि पड़कर क्लेश का कारण नहीं बन पातीं। जहाँ अन्तःशुद्धि अत्यन्त आवश्यक है, वहाँ बाह्यशुद्धि उसमें सहायक बनती है।

भावार्थ—सिर के बालों को कंघी से शुद्ध कर लेना आवश्यक है। इससे मल-सञ्चित होकर केशों में जुएँ आदि पड़ने की आशंका नहीं रहती।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**षट्पदातिशक्वरी**॥

नीरोगता का रहस्य

अङ्गादङ्गाद्वयमस्या अप यक्ष्मं नि दध्मसि।
तन्मा प्रापत्पृथिवीं मोत देवान्दिवं मा प्रापदुर्वन्तरिक्षम्।
अपो मा प्रापन्मलमेतदग्ने यमं मा प्रापत्पितॄंश्च सर्वान्॥ ६९॥

१. **वयम्**=हम शुद्धता व अग्निहोत्रादि द्वारा **अस्याः**=इस युवति के **अङ्गात् अङ्गात्**=प्रत्येक अंग से **यक्ष्मं अपनिदध्मसि**=रोग को सुदूर निवारित करते हैं। **तत्**=वह रोग **पृथिवीं मा प्रापत्**=इस शरीररूप पृथिवी को मत प्राप्त हो **उत**=और **देवान् मा**=विषयों की प्रकाशक इन इन्द्रियों को मत प्राप्त हो। **दिवं मा प्रापत्**=मस्तिष्करूप द्युलोक में न प्राप्त हो तथा **उरु अन्तरिक्षम्**=इस विशाल हृदयान्तिरक्ष में मत प्राप्त हो। २. **अग्ने**=यज्ञिय अग्ने! **एतत्**=यह रोगजनक **मलम्**=मल **अपः मा प्रापत्**=रेतःकणों में मत प्राप्त हो जाए। **यमं मा प्रापत्**=यह मल इस दम्पतीरूप जोड़े को मत प्राप्त हो **उ**=तथा **सर्वान् पितॄन्**=सब पितरों को भी मत प्राप्त हो। वस्तुतः रोगजनक मल से बचने का साधन भी 'यम तथा पितॄन्' शब्द से संकेतित हो रहा है। हमें संयमी बनना है तथा रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त रहना है, रोगों से बचने का यही मार्ग है।

भावार्थ—इस नवविवाहित युवति के शरीर में नीरोगता हो, इसमें रोगकृमियों का प्राबल्य न हो जाए। इसके 'शरीर, इन्द्रियाँ, मस्तिष्क, हृदय, रेतःकण' रोगजनक मलों से प्रभावित न

हों। इस घर में सब संयमी बने रहें व रक्षणात्मक कार्यों में प्रवृत्त रहें। इसप्रकार यहाँ सब नीरोग रहें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

संनहन

सं त्वा नह्यामि पयसा पृथिव्याः सं त्वा नह्यामि पयसौषधीनाम्।
सं त्वा नह्यामि प्रजया धनेन सा संनद्धा सनुहि वाजमेमम्॥ ७०॥

१. पति कहता है कि हे मेरे जीवन के साथी! **त्वा**=तुझे **पृथिव्याः**=पृथिवी के—पृथिवी से उत्पन्न **पयसा**=आप्यायन के साधनभूत पदार्थों से **संनह्यामि**=सम्यक् बद्ध करता हूँ। मैं **ओषधिनाम् पयसा**=ओषधियों की आप्यायन-शक्ति से **संनह्यामि**=सन्नद्ध करता हूँ। मैं अपने पास पार्थिव पदार्थों व ओषधि-वनस्पतियों की कमी नहीं होने देता। २. **त्वा**=तुझे **प्रजया धनेन**=उत्तम सन्तानों व धनों से **संनह्यामि**=इस कुल से सम्यक् बद्ध करता हूँ। इस प्रकार सब आवश्यक पदार्थों से **सन्नद्धा**=सन्नद्ध हुई-हुई **सा**=वह तू **इमं वाजम्**=इस शक्ति को **आसनुहि**=समन्तात् अंग-प्रत्यंग में संभजन करनेवाली हो। घर-सञ्चालन के लिए आवश्यक वस्तुओं की कमी होने पर चिन्ता के कारण शक्ति में कमी आ जाती है। सब आवश्यक पदार्थों से परिपूर्ण गृह चिन्ता का विषय न बनकर शक्तिवृद्धि का हेतु होता है।

भावार्थ—पति का कर्त्तव्य है कि घर में सब आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करने की व्यवस्था करे। इससे पत्नी का जीवन चिन्ता से दूर होता हुआ सशक्त बना रहेगा।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**बृहती**॥

अम+सा, साम+ऋक्, द्यौ+पृथिवी

अमोऽहमस्मि सा त्वं सामाहमस्म्यृक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्।
ताविह सं भवाव प्रजामा जनयावहै॥ ७१॥

१. पति कहता है कि **अहम्**=मैं **अमः**=प्राणशक्ति (vital air) **अस्मि**=हूँ तो **त्वम्**=तू **सा (असि)**=लक्ष्मी है (सा name of लक्ष्मी)। पति को प्राणशक्तिसम्पन्न होना चाहिए तथा पत्नी तो गृहलक्ष्मी होकर ही घर को शोभान्वित कर सकेगी। २. **साम अहं अस्मि**=मैं साम हूँ, **त्वं ऋक्**=तू ऋचा है। पति ने साम के गायन के समान मधुर होना है न कि कर्कश स्वभाव का। पत्नी ने विज्ञानवाली बनना है—समझदार। ऋचाओं से साम पृथक् नहीं, इसीप्रकार पति ने पत्नी से पृथक्त्व को सोचना ही नहीं। ३. **द्यौः अहम्**=मैं द्युलोक के समान हूँ, **त्वं पृथिवी**=तू पृथिवी है। द्युलोक बरसता है, पति ने भी घर में धन की वृष्टि करनी है। पृथिवी उत्पन्न करती है, पत्नी ने भी उत्तम पदार्थों का निर्माण करना है। द्युलोक पृथिवी पर वृष्टि का सेचन करता है, इसीप्रकार पति पत्नी में वीर्य का सेचन करनेवाला है। पृथिवी अन्नादि को उत्पन्न करती है, पत्नी उत्तम सन्तान को। ४. पति कहता है कि **तौ**=वे हम दोनों **इह सम्भवाव**=यहाँ सह स्थानों में मिलकर हों। हमारे हृदय एक हों, मन एक हों, हम अविद्वेषवाले हों, परस्पर प्रीतिसम्पन्न हों। इसप्रकार हम **प्रजां आजनयावहै**=उत्तम सन्तान को जन्म दें।

भावार्थ—पति प्राण है तो पत्नी लक्ष्मी। प्राणशक्ति ही शरीर को लक्ष्मी-सम्पन्न बनाती है। पति शान्त हो, पत्नी विज्ञानवाली। पति द्युलोक के समान ज्ञानदीप्त हो, पत्नी पृथिवी के समान दृढ़ आधारवाली। ऐसे पति-पत्नी ही मिलकर उत्तम सन्तान को जन्मदेनेवाले होते हैं।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

अरिष्टासू

जनियन्ति नावग्नवः पुत्रियन्ति सुदानवः। अरिष्टासू सचेवहि बृहते वाजसातये॥ ७२॥

१. **अग्नवः**=(अग्रे गन्तारः) हमारे आगे चलनेवाले, अर्थात् हमारे बड़े (हमारे माता-पिता) **नौ**=हम दोनों को **जनयन्ति**=पति-पत्नी के रूप में चाहते हैं। **सुदानवः**=ये उत्तम दानशील व्यक्ति **पुत्रियन्ति**=हमारे लिए सन्तानों की कामना करते हैं। 'वर-वधू' दोनों के माता-पिता 'इन्हें उत्तम सन्तान प्राप्त हो', ऐसी कामना करते हैं। २. **अरिष्टासू**=अहिंसित प्राणोंवाले हम प्राणशक्ति को नष्ट न करते हुए **सचेवहि**=परस्पर मिलकर चलें। इसप्रकार हम **बृहते वाजसातये**=महान् शक्ति-लाभ के लिए हों। हमारी शक्ति में वृद्धि ही हो।

भावार्थ—हम बड़ों के आशीर्वाद के साथ पति-पत्नी के रूप में होते हुए इसप्रकार परस्पर मिलकर चलें कि हमारी प्राणशक्ति अहिंसित रहे और हम शक्ति प्राप्त करनेवाले बनें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**अनुष्टुप्**॥

प्रजावत् शर्म

ये पितरो वधूदर्शा इमं वहतुमागमन्। ते अस्यै वध्वै संपत्न्यै प्रजावच्छर्म यच्छन्तु॥ ७३॥

१. **ये पितरः**=जो हमारे पितर—बड़े लोग **वधूदर्शा**=वधू को देखने की कामनावाले **इमम्**=इस **वहतुं आगमन्**=विवाह में आये हैं, **ते**=वे सब **अस्यै**=इस **संपत्न्यै**=पति के साथ सम्यक् मेलवाली **वध्वै**=वधू के लिए **प्रजावत् शर्म यच्छन्तु**=प्रशस्त सन्तानवाले सुख को प्राप्त कराएँ। उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दें।

भावार्थ—विवाह में उपस्थित सब बड़े लोग इस पति के साथ मेलवाली वधू के लिए उत्तम सन्तति की प्राप्ति का आशीर्वाद दें।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

पूर्वा रशनायमाना

येदं पूर्वागन्रशनायमाना प्रजामस्यै द्रविणं चेह दत्त्वा।
तां वहन्त्वगतस्यानु पन्थां विराडियं सुप्रजा अत्यजैषीत्॥ ७४॥

१. **या**=जो **पूर्वा**=(पॄ) पालन व पूरण करनेवाली **रशनायमाना**=रशना के समान आचरण करनेवाली, अर्थात् कर्त्तव्यकर्मों के करने में सदा कटिबद्ध यह युवति **इदम्**=इस गृह में **आगन्**=आई है। **अस्यै**=इस वधू के लिए **इह**=यहाँ इस गृह में **प्रजां द्रविणं च दत्वा**=उत्तम सन्तति व ऐश्वर्य को प्राप्त कराके **ताम्**=उस वधू को **अ-गतस्य पन्थाम् अनुवहन्तु**=न चले गये, अर्थात् दीर्घजीवी पति के मार्ग पर अनुकूलता से सब देव ले-चलें। सब देवों के अनुग्रह से यह दीर्घजीवी पति के अनुकूल मार्ग पर चलनेवाली हो। इसका सौभाग्य स्थिर रहे और पति के साथ अनुकूलता में बनी रहे। २. इस प्रकार **इयम्**=यह **विराट्**=अति तेजस्विनी वधू **सुप्रजाः**=उत्तम प्रजावाली होती हुई **अति अजैषीत्**=सब कष्टों व शत्रुओं को जीतनेवाली बनें।

भावार्थ—पत्नी (क) पालनात्मक व पूरणात्मक कर्मों में प्रवृत्त हो। (ख) कर्त्तव्य-कर्मों के करने में सदा कटिबद्ध हो। (ग) सौभाग्यशालिनी बने। (घ) पति के अनुकूल मार्ग पर चले। तेजस्विनी हो। (ङ) उत्तम प्रजावाली हो। (च) कष्टों व शत्रुओं को जीतनेवाली हो।

ऋषिः—**सावित्री सूर्या**॥ देवता—**आत्मा**॥ छन्दः—**त्रिष्टुप्**॥

सुबुधा-बुध्यमाना

प्र बुध्यस्य सुबुधा बुध्यमाना दीर्घायुत्वाय शतशारदाय।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु॥ ७५॥

१. पत्नी को अन्तिम आशीर्वाद व शिक्षा इस रूप में दी जाती है कि **प्रबुध्यस्व**=तू प्रकृष्ट बोधवाली हो। **सुबुधा**=उत्तम बुद्धिवाली तू **बुध्यमाना**=समझदार बन। इसप्रकार तू **शतशारदाय दीर्घायुत्वाय**=शत वर्षों के दीर्घजीवन के लिए हो। २. **गृहान् गच्छ**=पति के गृह को तू प्राप्त हो **यथा**=जिससे तू **गृहपत्नी असः**=गृहपत्नी बने। तू वस्तुतः घर का उत्तमता से रक्षण करनेवाली हो। **सविता**=वह सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक प्रभु ते **आयुः**=तेरे आयुष्य को **दीर्घं कृणोतु**=दीर्घ करे।

भावार्थ—पत्नी उत्तम बोधवाली होती हुई सब कार्यों को समझदारी से करे। पतिगृह को प्राप्त होकर वस्तुतः गृहपत्नी बने। प्रभु-स्मरणपूर्वक कार्यों को करती हुई दीर्घजीवन प्राप्त करे।

॥ इति चतुर्थदशं काण्डम्॥